नेत्र रोग चिकित्सा

नेत्र रोग चिकित्सा

(नेत्रों की स्वास्थ्य-रक्षा और नेत्र रोगों के उपचार
सम्बन्धी सांगोपांग पुस्तक)

सम्पादक :

डॉ. चमनलाल गौतम

रचयिता—प्राथमिक चिकित्सा, मूत्र चिकित्सा, दन्त रोग
चिकित्सा, सर दर्द चिकित्सा, गुप्त रोग चिकित्सा
यज्ञ से रोग निवारण, मोटापा कैसे दूर
हो ? सरल होमियोपैथिक चिकित्सा
योगासन से रोग निवारण सूर्य
नमस्कार से रोग निवारण, मंत्र
शक्ति से रोग निवारण।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर), बरेली–२४३००१(उ० प्र०)

प्रकाशक :
डॉ० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान,
ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर)
बरेली-२४३००१ (उ०प्र०)

प्रथम बार :
१९७६

मुद्रक :
शैलेन्द्र वी. माहेश्वरी
नव ज्योति, प्रेस
भीकचन्द मार्ग, मथुरा

मूल्य :
चार रुपये पिचहत्तर पैसे मात्र

भूमिका

शरीर में नेत्र का महत्व सबसे अधिक है, क्योंकि उसके बिना मनुष्य किसी भी काम का नहीं रहता। संसार के जितने भी कार्य हैं, वे सब दर्शन-शक्ति से ही साध्य हो सकते हैं। यदि कोई नेत्र हीन समझे कि वह किसी मशीन की मरम्मत कर सकेगा, किसी पहाड़ को खोद सकेगा, किसी पुस्तक को पढ़ सकेगा अथवा ऐसा ही कोई कार्य कर सकेगा, जो देखे बिना नहीं हो सकते तो यह स्पष्ट हैं कि उसका वैसा समझना निराधार होगा। वह किसी ऐसे कार्य को भले ही कर ले, जिसकी उसे आदत पड़ गई हो, किन्तु बिना आदत वाला कोई कार्य बिना नेत्र के किया जाना सम्भव नहीं है।

इसलिए नेत्रों की रक्षा अति आवश्यक कार्य है। वर्तमान समय के भौतिकवादी मनुष्य इश्वर की परवाह करें या न करें, किन्तु अपने शरीर की परवाह भी नहीं करते। वे कहते हैं कि हमें कुछ भी करने का अवकाश नहीं मिलता। ठीक है, आज के मनुष्य को अवकाश तो नहीं है, किन्तु, शरीर-रक्षा के लिए तो कुछ समय व्यय करना आवश्यक है ही।

नेत्र-रक्षा के लिए मनुष्य को अपने आहार-विहार की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है। आहार का अभिप्राय उस प्रकार के भोजन से है, जिसमें सब प्रकार के पोषक तत्वों का समावेश हो, जो सुपाच्य और हल्का हो, जो कब्ज या अन्य विकास उत्पन्न न कर सके, जिसका आँतों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ता हो।

विहार का अभिप्राय दिन चर्या से है। दिन रात में मनुष्य जो कुछ भी कार्य करता हैं, वही विहार है। प्रातः काल से रात्रि शयन तक के सभी कार्य नियमानुसार किये जाने चाहिए। सोकर उठता है तो समय पर उठा जाय, समय पर शौच, दांतुन-कुल्ला या स्नानादि किया जाय,

फिर कार्य-व्यवसाय, भोजन या अन्यान्य कार्यों एवं रात्रि शयन आदि सभी कार्य नियमित रूप से किये जाँय तो शरीर के सभी अंग स्वस्थ रहते हैं, नेत्र पर भी उस नियमितता का अत्यन्त प्रभाव पड़ता है।

विहार में स्त्री-प्रसंग भी समाविष्ट है। उसमें संयमित रहना भी नियमित दिन चर्या में ही आता है। प्रसंग में असंयम रखना शरीरस्थ धातुओं को क्षीण कर देता है, जिसका प्रभाव नेत्रों पर भी कुछ कम नहीं पड़ता। इसलिए इस ओर से सतर्क रहना और भी आवश्यक होता है। यही कारण है कि आचार्यों ने मनुष्य को आहार और विहार दोनों में ही संयम रखने का निर्देश दिया है।

विशेषज्ञों ने नेत्रों को स्वस्थ रखने के लिए अनेक प्रकार के व्यायामों की कल्पना की, जिनके द्वारा मनुष्य अपनी विकार ग्रस्त आँखों को भी ठीक कर सकता है। उन व्यायामों में परिश्रम अधिक नहीं होता और न समय ही अधिक देना होता है किन्तु नित्य नियमित रूप से किये विना उनका लाभ दिखाई नहीं दे सकता है। जो लोग धैर्यपूर्वक उन क्रियाओं को करते हैं, उन्हें समुचित लाभ होता देखा गया है। व्यायाम की वे सरल क्रियायें इस पुस्तक में बहुत समझा कर लिखी गई हैं।

हमारे योगाचार्यों ने भी नेत्रों को स्वस्थ रखने अथवा रोगी नेत्रों को रोग मुक्त करने के लिए विभिन्न योग-क्रियाओं का निर्देश किया है। उनमें मन और शरीर के शोधनार्थ अनेक क्रियाएं योगाचार्यों द्वारा अनुभव की कसौटी पर कसी हुई है। कपालरन्ध्र धौति, नेति-क्रिया, नासिका द्वारा दुग्ध-पान, सूत्र नेति का प्रयोग, विविध प्रकार के आसन और प्राणायामों की उपयोगिता आदि का आधुनिक विशेषज्ञ भी मान्य करते हैं।

सूर्य में दर्शनात्मक शक्ति की प्रबलता है। प्राचीन आचार्यों के मत में तो मनुष्य क्या, संसार के सभी प्राणी सूर्य-किरणों से ही दर्शन-शक्ति प्राप्त करते थे। आज भी अनेक विशेषज्ञ सूर्य-किरणों की उस शक्ति से

लाभ उठाने की चर्चा करते हुए शक्ति ग्रहण के उपायों को प्रकाश में लाते रहते हैं। पाश्चात्य चिकित्सक भी पार्मिग आदि क्रियाओं के द्वारा नेत्र-शक्ति वर्द्धन की सफलता स्वीकार करते हुए उन्हें सर्वोपयोगी बताते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में योग की उन प्रभावकारी क्रियाओं तथा सूर्य-किरणों से दर्शन-शक्ति ग्रहण करने की क्रियाओं पर समुचित प्रकाश डाला गया है। यदि नित्य नियम से और धैर्यपूर्वक उनका अभ्यास किया जाय तो नेत्रों को बिना किसी औषधि के स्वस्थ रखा जा सकता है और रोगोत्पत्ति होने पर उसका निवारण किया जा सकता है।

नेत्र रोगों के उपचार विषयक उपायों में आयुर्वेद भी किसी प्रकार पीछे नहीं है। उसमें भी नेत्रों के सभी रोगों का पृथक-पृथक विस्तृत रूप से विवेचन मिलता है तथा उन रोगों को दूर करने के लिए अत्यन्त प्रभावकारी प्रयोग भी! यदि उन प्रयोगों को विधि-विधान से बनाकर काम में लाया जाय तो कोई कारण नहीं कि नेत्र-रोगों का स्थायी रूप से शमन न हो सके। उनमें से अत्यन्त प्रभावशाली नुस्खों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

यूनानी चिकित्सक भी विभिन्न नेत्र रोगों का उपचार करते रहे हैं। और उन्होंने भी अपने अनुभूत नुस्खों को जनोपकारार्थ लिख कर मानव-कल्याण की भावना व्यक्त की है। उनमें जो नुस्खे अधिक उपयोगी प्रतीत हुए, वे भी इस पुस्तक में खूब समझा कर लिखे गए हैं।

इस पुस्तक के लेखन-कार्य में मथुरा के चिकित्सा विद् कविराज दाऊदयाल गुप्त से सहायता ली गई है, उनके इस सहयोग के लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है—पाठकों का यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

—प्रकाशक

विषय-सूची

१४—नेत्र रोगों की आयुर्वेदिक चिकित्सा

नेत्र रोग चिकित्सा

नेत्र रक्षा की आवश्यकता

प्रारम्भिक निर्देश

नेत्र सांसारिक प्राणी के लिए बहुत आवश्यक वस्तु है। यदि नेत्र नहीं तो समूचा संसार ही व्यर्थ है। क्योंकि संसार के जितने भी कार्य हैं, वे सब नेत्रों के द्वारा ही सम्पन्न हो सकते हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार नेत्र भी शरीर के प्रमुख अङ्गों में अपनी प्रमुखता रखता है। इसलिये नेत्र की रक्षा करना बहुत आवश्यक कार्य है। जो लोग इसमें किंचित् भी उपेक्षा करते हैं, वे अपनी इस अत्यन्त दुर्लभ वस्तु को गंवा बैठते हैं। बाद में उसके लिए पछिताते हैं, किन्तु 'फिर पछिताये होत कहा जब चिड़िया चुग गई खेत ?' रोग असाध्य होता जाता है और रोगी विवश होकर देखता रहता है।

उस स्थिति के आने से पहिले ही यदि सँभल जायें तो कोई कारण नहीं कि नेत्र-रोगों से बचाव न हो सके। इसके लिए आवश्यकता होती है। संयमित जीवन की, सन्तुलित आहार की और उस परिश्रम की जो खाये-पीये अन्न को पूर्ण रूप से पचाने में सहायक हो सकता हो। अभि-प्राय यह कि सादा भोजन उच्च विचार रखते हुए सात्विकता से परिपूर्ण दिनचर्या का निर्वाह किया जाय।

संयमित दिनचर्या की शक्ति

इस प्रकार की दिनचर्या से एक नेत्ररोग तो क्या, संसार भर के सभी रोग दूर भागते हैं। इसके पालन से उनमें से किसी की भी उत्पत्ति असम्भव है। इसलिए अपने विचारों को उच्च रखते हुए आहार-विहार में संयम वर्तना चाहिए।

नेत्रों की रक्षा के लिए उनकी नित्य प्रति सफाई की जानी चाहिए। उन्हें धोया जाय, परन्तु इस प्रकार कि नेत्रों की रगों पर कोई दबाव न पड़े। उनकी नाजुक स्थिति को समझते हुए ही कोई क्रिया की जानी उचित है। क्योंकि जरा-सी असावधानी से की जाने वाली क्रिया भी कभी कभी बहुत हानिकारक हो जाती है।

वस्तुतः नेत्र भी शरीर का ही एक अवयव है. जैसे शरीर को सफाई व्यायाम, खान-पान आदि की अपेक्षा रहती है, वैसे ही नेत्रों को भी रहती है। व्यायाम के उद्देश्य से विशेषज्ञों ने अनेक प्रकार की विधियां कल्पित की हैं, उन पर आगे चल कर यथा स्थान प्रकाश डाला जायगा। यदि उन पर ध्यान देते हुये धैर्य और विश्वास पूर्वक अभ्यास किया जाय तो उत्पन्न हुये नेत्र रोगों को दूर करने में भी अत्यधिक सहायता मिल सकती है।

चश्मे का उपयोग

वर्तमान समय में चश्मे का प्रचलन बढ़ रहा है। चश्मे का उद्देश्य यद्यपि नेत्र के कार्य कलापों को सरल करने में सहायता देना है, तथापि आज उसका उपयोग यथार्थ उद्देश्य की पूर्ति के लिए नहीं, वरन् फैशन परस्ती में किया जाता है। चश्मा आज के युग में मुख का सौन्दर्य बढ़ाने का एक साधन है और बहुत-से मनुष्य उसका प्रयोग इसी रूप में करते हैं।

लोग समझते हैं कि नेत्र-रक्षा का प्रमुख साधन चश्मा ही है और

इसलिए वे उसका लगाया जाना बहुत आवश्यक मानते हैं और जब उसे आंखों पर चढ़ा लेते हैं, तब तो उन्हें यह भी चिन्ता नहीं रहती कि आंखों को स्वाभाविक रूप से स्वस्थ रखने के लिए उचित साधनों का आश्रय लिया जाना चाहिए अथवा नहीं।

पञ्च भूतात्मक शरीर

नेत्रों को स्वस्थ रखने के लिए विभिन्न व्यायामों और योग-क्रियाओं तक ही सीमित रहना हम पर्याप्त नहीं समझते। मनुष्य शरीर पचभूतात्मक और त्रिगुणात्मक है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि सभी मनुष्योंमें पञ्चभूतों और तीन गुणों के अंशों में समानता ही हो और यही कारण है कि सभी मनुष्यों में प्रकृति की भिन्नता पायी जाती है। किसी में पृथिवी भूत की अधिकता है तो किसी में तेज की, किसी में जल की अधिकता है तो किसी में वायु की अथवा किसी में आकाश की अधिकता या प्रमुखता हो सकती है।

इसी प्रकार तीन गुणों में से भी किसी में वात की अधिकता हो सकती है, तो किसी में पित्त की और किसी में कफ की। यही कारण है कि किसी को कोई उपचार हितकर रहता है तो किसी को अन्य कोई। किसी का रोग साधारण व्यायाम से काबू में आ सकता है तो किसी का. योग क्रियाओं के अभ्यास से। किसी के लिये किसी भी उपचार की आवश्यकता नहीं होती, वरन् केवल संयमित आहार और आपेक्षित परिश्रम से ही लाभ हो जाता है, जब कि किसी रोगी को सम्बन्धित रोग के लिए निर्दिष्ट औषधि ही कारगर सिद्ध हो जाती है।

इसीलिए हमारे आचार्यों ने अनुष्य की प्रकृति से सम्बन्धित तथ्यों पर भले प्रकार विचार कर उपचार की विभिन्न पद्धतियों का आविष्कार किया और आयुर्वेद में भी एसे-ऐसे नुस्खे आदि का वर्णन किया गया, जिनके द्वारा रोग की शीघ्र निवृत्ति हो सके। आगे के पृष्ठों में इन सभी पहलुओं पर पूर्ण प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

नेत्रों की रचना

प्रकाश तरंगें और संवेदनायें

नेत्र एक अत्यन्त महत्व पूर्ण अङ्ग है । यदि नेत्र न हों तो कहीं कुछ भी दिखाई नहीं दे सकता। प्रकाश की तरंगें नेत्र के लिए संवेदनायें उपस्थित करती हैं। जब किसी वस्तु को देखना होता है, तब उस वस्तु पर पड़ने वाली प्रकाश की तरङ्गें ही नेत्र के भीतर प्रकाश करके उस वस्तु को दिखाती हैं। इस प्रकार नेत्र का कार्य प्रायः उस केमरे के समान है, जो बाहर से रूप ग्रहण करके उसे पटल पर अङ्कित कर देता है।'

नेत्र की स्थिति आस्थियों के खोखले भाग में होती है। वह खोखला भाग ही नेत्र गोलक (Eye ball) कहलाता है । इसी में से नेत्र गोल गेंद के समान अटका रहता है । यह नेत्र गोलक भी उन सुदृढ़ मांस पेशियों के सहारे झूलता-सा रहता है जो कि गिनती में चार होती हैं। नेत्र गोलक में तीन पटल (परत) होती हैं— (१) श्वेत पटल (Sclerotic coat), (२) मध्य पटल (Choroid) और (३) दृष्टिपटल (Retina) इनकी पूर्ण जानकारी निम्न प्रकार है–

श्वेत पटल

यह देखने में कुछ कठोर, रङ्ग में श्वेत एवं पारदर्शक Transparent) होता है। इसका आगे का भाग का उभरा हुआ होता है, जो कि कनीनिका (Cornia) कहलाता है।

श्वेत पटल ही नेत्र का सब से ऊपरी आवरण है। यह श्वेत एवं

कठोर रेशों से बना होता है । इसका कार्य नेत्र गोलक के आन्तरिक भागों की रक्षा करना और नेत्र के स्वरूप को बनाये रखना है ।

मध्य पटल

यह कोरॉयड कोट नामक मध्य आवरण है, जिसे दूसरी पर्त भी कहते हैं । यह पटल काले रङ्ग का तथा रक्त शिराओं के जाल के समान फैला रहता हैं । वस्तुत: इसका कार्य केमरे की काली परत के समान ही है । इसके सामने की ओर एक छिद्र होना है, जिस पर नेत्र के लेंस रहते हैं तथा बाह्य आवरणके मध्य में जो रङ्गीन माँसपेशी होती है, उसे नेत्र का तारा (Iris) या उपतारा भी कहते हैं । इसका कार्य लेंस पर पड़ने वाले प्रकाश को संयमित करना है ।

उपतारे के ठीक मध्य में एक छोटा छिद्र होता है, जिसे नेत्र की पुतली (Pupil) कहते हैं । इसी पुतली के द्वारा प्रकाशकी किरणें भीतर प्रवेश करती हैं । पुतली के ठीक पीछे एक अन्य लेन्स होता है, जिसकी गोलाई लघु वलिकाय पेशी (Ciliary muscles) की सहायता से घट-बढ़ सकती है । अथवा यों समझिए कि वलिकाय पेशी संकुचित होकर अथवा फैल कर लेंस की गोलाई को घटाने-बढ़ाने का कार्य करती है । वलिकाय पेशी के द्वारा ही नेत्र निकटस्थ या दूरस्थ वस्तु पर केन्द्रित होना (Focused) निर्भर है । लेंस का मुख्य कार्य प्रकाश की किरणों को दृष्टि पटल पर केन्द्रित करना ही है ।

दृष्टि पटल

यह नेत्र गोलक का सबसे भीतरी भाग है । इसे पाश्चात्य भाषा में रैटिना (Retina) कहते हैं । यह एक पतली झिल्ली है, जो कि नेत्र गोलक के पृष्ठ भागपरचढ़ी रहती है तथा मध्य पटल के नीचे और उससे लगी हुई रहती है । इसका फैलाव नेत्र गोलक के भीतरी भाग में तिहाई स्थान में रहता है । इसके मध्य में एक पीला धब्बा-सा होता है, जो कि

पीत विन्दु (Fovea) कहलाता है। रैटिना में जो सलेदनशील स्नायु कोष होते हैं, वे मस्तिष्क से सम्वन्ध बनाये रहते हैं।

दृष्टि पटलजव उत्तेजित होता है, तभी प्रवल दृष्टि संवेदना होती है। जिस भाग से सन्वेदनशील कोष मस्तिष्क को जाते हैं और जहां दृष्टि ग्रहण करने की सन्वेदना नहीं होती, वह भाग अन्ध विन्दु कहलाता है।

दृष्टि पटल में दो प्रकार के कोष मिलते हैं जिन पर दृष्टि की संवेदना निर्भर है। वे हैं— शंकु (Cones) और शलाका (Rods) इनमें शंकु की आकृति शंकु के समान होती है, इसीलिए इनको यह नाम दिया गया है। इनका कार्य रङ्ग को देखने से सम्वन्धित है और यह प्रकाश में ही क्रिया शील रहते हैं तथा अन्धकार में व्यर्थ हो जाते हैं। इनकी संख्या लगभग सत्तर लाख होती है। जिनमें से सर्वाधिक संख्या पीत-बिन्दु पर होती है। किन्तु यह ज्यों-ज्यों दृष्टि पटल के वाहर की पर्त की ओर चलते हैं, त्यों-त्यों इनकी संख्या घटती जाती है।

शलाका का सम्बन्ध चमक-दर्शक से है। यह लम्बे आकार के होते हैं। इन्हें रंगोका ज्ञान न होते हुये भी आकार का ज्ञान होता है और यह अन्धकार में भी देखने में समर्थ रहते हैं। जब प्रकाश की कमी होती है, तब शंकु दृष्टि, शलाका दृष्टि के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

दर्शन-क्रिया

किसी भी वस्तु को देखने में उस वस्तुपर पड़ने वाला प्रकाश विद्युत चुम्बकीय (Electro magnetic) तरङ्गों के द्वारा नेत्र तक पहुँचता है। प्रकाश की तरङ्गें दृष्टि पटल के द्वारा प्रविष्ट होती हुई लेंस पर जा पहुंचती हैं। लेंस संकुचित होकर अथवा फैल कर प्रकाश की तरङ्गों को दृष्टि पटल पर केन्द्रित कर देता है। उस समय मध्य पटल की वह काली भित्ति दर्पण के समान कार्य करती हैं, जिससे टकराती हुई प्रकाश-तरंगें जब वापिस लौटती हैं, तब दृष्टि पटल में स्थित कोष कार्यरत हो जाते हैं। उस समय शंकु और शलाका के द्वारा संवेदना का ग्रहण होता है।

दृष्टि पटल में सात परतें होती हैं, जिनमें अनेक प्रकार के कोषों की विद्यमानता है। इनका सम्बन्ध दृष्टि तन्त्रिका आप्टिक नर्व) से होता है। दृष्टि केन्द्र से आरम्भ होने वाली यह तन्त्रिकायें प्रमस्तिष्क के विभिन्न भागों से होती हुई, उसके निचले भाग के लगभग बीच से प्रकट होतीं और नेत्र पटल पर पहुँच कर फैल जाती हैं।

मनुष्य जब जिस वस्तु को देखने का प्रयास करता है, तब उस वस्तु की छाया इस पटल पर पड़ती है और तभी दृष्टि तन्त्रिकायें उसकी सूचना मस्तिष्क को दे देती हैं। यही कारण है कि यदि दृष्टि केन्द्र में अथवा तंत्रिका में किसी प्रकार का कोई विकार उत्पन्न हो जाने पर दृष्टि के नष्ट होने की आशङ्का हो सकती है।

नेत्र गति से सम्बन्धित अवयव

वस्तुत: जिन अवयवों का नेत्र की गति से सम्बन्ध है, वे संख्या में तीन माने जाते हैं — (१) नेत्र प्रेरक तन्त्रिका (Oculo motor), (२) चकक्र तन्त्रिका (Trochlear, और (३) अपवर्तनी तन्त्रिका (Abducent) यह तन्त्रिकायें नेत्रों की पेशियों तक जाकर नेत्रों को चारों ओर घुमाने में सहायक होती हैं।

नेत्र में दो तिरछी और चार सीधी के रूप में छ: पेशियाँ होती हैं। सीधी पेशियों में से एक चालक छठी तन्त्रिका अपवर्तनी का युग्म होता है। तिरछी एक पेशी का संचालन चतुर्थ तन्त्रिका युग्म द्वारा तथा शेष एक तिरछी और तीन सीधी पेशियों का संचालन तृतीय तन्त्रिका युग्म द्वारा होता है। इससे यह स्पष्ट है कि तृतीय तन्त्रिका युग्म ही नेत्र की गति का प्रमुख रूप में संचालन करता है।

दृष्टि संग्राहक

यद्यपि नेत्र की रचना के विषय में अब तक अपेक्षित प्रकाश डाला जा चुका है, तथापि दृष्टि संग्राहकों के विषय में भी ठीक प्रकार से सम-

ज्ञना आवश्यक है । क्योंकि इससे देखने की क्रिया का समुचित ज्ञान हो सकता है ।

दृष्टि पटल में विद्यमान शंकु और शलाका रूप दो प्रकार के जिन ज्ञान कोषों का वर्णन किया जा चुका है, वही दृष्टि संग्राहक कोष (Visual aeceptor cells) कहलाते हैं । वस्तुतः इनका कार्य परिवेश से प्रकाश की भौतिक संवेदनाओं का ग्रहण करना है । ज्ञानवह स्नायुओं और दृष्टि स्नायुओं के द्वारा नेत्र का सम्बन्ध अन्तर्मस्तिष्क से तथा अन्तर्मस्तिष्क का वृहद् मस्तिष्क में पश्च कपाल खण्डों (Occipital lobes) से होता है ।

पहिले बता चुकेहैं कि प्रकाश को नेत्र तक पहुँचाने का कार्य विद्युत चुम्बकीय तरंगें करती हैं । प्रकाश की उत्तेजना पर तरङ्ग की लम्बाई (वेव लेंग्थ), शुद्धता एवं विस्तार का प्रभाव पड़ता है । लम्बाई से रङ्ग, शुद्धता से सिक्तता और विस्तार से दृष्टि संवेदना की दीप्ति प्रभावित होती है । दृष्टि पटल के सभी भाग रङ्गों की संवेदना से ग्रहण नहीं करते वरन् जो विभिन्न भाग ग्रहण भी करते हैं, वे पृथक-पृथक रङ्गों की संवेदना ग्रहण करते हैं । अर्थात् कोई भाग किसी रङ्ग की और कोई भाग किसी रङ्ग की संवेदना ग्रहण किया करता है । यदि संवेदना ग्रहण करने वाले इन भागों में से कोई भाग अपने कार्य को करने में असमर्थ हो जाय तो नेत्र भी उससे सम्बन्धित रङ्ग को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होगा और इस प्रकार अन्यान्य भागों के निष्क्रिय होने की अवस्था में मनुष्य वर्णान्धता का शिकार हो जाता है ।

नेत्र का वर्णान्ध रोग

रङ्गों की संवेदना ग्रहण करने वाले भागों द्वारा ही पीले, लाल, नीले, हरे, नारंगी आदि रंगों का पहिचानना और उनके अन्तर को जानना सम्भव होता है । परन्तु जब उस प्रकार से रंगों का अन्तर किया

जाना सम्भव नहीं होता तो नेत्र का वह दोष वर्णान्धता (कलर ब्लाइन्ड नैस) कहा जाता है। यह रोग दो प्रकार का हो सकता है— (१) जन्म-जात, और (२) किसी भी आयु में उत्पन्न, जन्मजात का अभिप्राय वर्णान्ध रूप में उत्पन्न होने से है, जो कि आनुवांशिक भी हो सकता है। किसी भी आयु में होने का अभिप्राय उस स्थिति से है, जिसमें मनुष्य किसी भी समय वर्णान्ध हो सकता है।

वर्णान्धता के प्रकार

सामान्य रूप से वर्णान्धता के तीन प्रकार माने जाते हैं—

(१) नीले-पीले रंग की वर्णान्धता (ब्लू-यलो कलर ब्लाइन्डनैस)
(२) लाल-हरे रंग की वर्णान्धता (रैड-ग्रीन कलर ब्लाइंडनैस),
(३) पूर्ण वर्णान्धता (टोटल कलर ब्लाइन्डनैस)।

प्रथम प्रकार की वर्णान्धता में नीला या पीला रंग दिखाई नहीं देता इस प्रकार की वर्णान्धता जन्म से हुई नहीं समझी जाती, इसलिए इसे अर्जित मानते हैं। यह रोग प्राय: बहुत कम व्यक्तियों में पाया जाता है।

दूसरे प्रकार की वर्णान्धता का अभिप्राय लाल या हरे रंग का दिखाई न देना है। इसका जन्म से होना माना जाता है और यह स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक पायी जाती है।

तीसरे प्रकार की वर्णान्धता में मनुष्य को किसी भी रंग की सवेदना न होने के कारण कोई भी रंग नहीं दिखाई देता। यदि कुछ दिखाई देता है तो केवल भूरा, उजला अथवा काला ही दिखाई देता है। इसमें इन्द्र धनुष के किसी भी रंग की संवेदना नहीं हो पाती। इस विकृति को शलाका दृष्टि (Rod vision) कहते हैं।

रङ्गों का मिश्रण

परिक्षणों से यह भी पता चलता है कि विभिन्न लम्बाई की प्रकाश तरंगों का मिश्रण होने पर भी रंग की संवेदना उत्पन्न हो जाती है।

किन्हीं भी दो रंगों को मिलाया जाय तो उसके फल स्वरूप एक तीसरा रंग व्यक्त हो जाता है और उसी की संवेदना होती है।

स्पष्ट देखते हैं कि पीला और नीला रंग परस्पर मिलाया जाय तो वह हरे रंगके रूप में बदल जाते हैं। पीले-लाल मिलने पर नारंगी और नीले-लाल के मिलने पर बैंगनी रंग बन जाता है। परन्तु संवेदना के लिये रंगों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है— (१) पूरक, और (२) अपूरक ' पूरक रंगों में पीले और नीले अथवा लाल और हरे के जोड़ों को मानते हैं, जिनके प्रत्येक जोड़े में प्रत्येक रंग अपने जोड़े के दूसरे रंगका पूरक होता है। परन्तु उक्त रंगों के दोनों जोड़ों में का कोई भी एक रंग दूसरे जोड़े के किसी रंग के लिए पूरक नहीं हो सकता। अभिप्राय यह है कि पीला रंग लाल या हरे रंग के लिए अथवा नीला रंग भी लाल या हरे रंग के लिये अपूरक है। इसी प्रकार लाल पीले या नीले के लिये अथवा हरा भी पीले या नीले के लिए अपूरक ही समझना चाहिए। रंगों के मिश्रण सम्बन्धी यह तीन नियम मान्य समझे जाते हैं—

(१) सभी पूरक रंगों (पीले, नीले, लाल, हरे) को विशेष अनुपात में मिलावें तो भूरे रंग की संवेदना होगी।

(२) उक्त पूरक रंगों को विशेष अनुपात में मिलाने पर भूरे रंग की जो संवेदना होगी, उसकी चसक दोनों रङ्गों की चमक के अनुपात में होगी।

(३) यदि अपूरक रङ्गों को एक विशेष अनुपात में मिलावें तो उनके मध्य का रङ्ग दिखाई देगा। इस मिले हुये रङ्ग में अपूरक रङ्गों की चमक के अनुपात में चमक होगी।

सूर्य रश्मि चिकित्सा में उक्त तथ्यों को विशेष ध्यान से देखा जाय तो रोग-निवृत्ति में अधिक सहायता मिल सकती है। सामान्यतः रोगी को जिस रङ्ग की संवेदना में बाधा उपस्थित हुई प्रतीत होती हो, उसी

रङ्ग की बोतल का सूर्य तप्त पानी मिलाने और उसी से सम्बन्धित रङ्ग का प्रकाश डालने से लाभ हो सकता है। नेत्र रोगों से सम्बन्धित सूर्य-रश्मि-चिकित्सा विषयक जानकारी इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गई।

नेत्र और मन का पारस्परिक सम्बन्ध

नेत्र एक ज्ञानेन्द्रिय है

नेत्रों का मन से गहरा सम्बन्ध है। यदि मन में किसी प्रकार का विकार है तो उसके फलस्वरू नेत्र भी विकारग्रस्त हो सकते हैं। परन्तु, ऐसा क्यों ? इसका उत्तर पाने के लिए इस विषय को ठीक प्रकार से समझना आवश्यक होगा।

नेत्र की गणना पंच ज्ञानेन्द्रियों के अन्तर्गत आती है। नेत्र के द्वारा देखकर ही किसी वस्तु के रूप का यथार्थ ज्ञान होता है। जब नेत्र किसी वस्तु को देखता है, तब उस वस्तु की छाया नेत्रगत लेंस के द्वारा छाया-पट (रैटिना) पर पड़ती है और तब वह छाया ऑप्टिक नर्व द्वारा मस्तिष्क तक पहुंचती है। उस छाया के स्वरूप का निर्णय मन के द्वारा ही होता है। इस प्रकार, यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि किसी भी रूप को देखने का कार्य मन ही करता है, नेत्र नहीं करता।

हमारे आचार्यों ने करोड़ों वर्ष पहिले ही यह तथ्य स्पष्ट कर दिया कि मन का सम्बन्ध इन्द्रिय से और इन्द्रिय का सम्बन्ध विषय से होता है। कोई भी इन्द्रिय मन की प्रेरणा के बिना अपने विषय से यथार्थ

सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकती। देखने, सुनने, सूँघने, रसास्वादन करने और गर्म-ठण्डे स्पर्श का अनुभव करने आदि कार्य मन पर ही निर्भर हैं। क्योंकि मन जब किसी एक विषय में लीन होता है, तब कोई अन्य इन्द्रिय, उस विषय से भिन्न विषय को ग्रहण करने में असमर्थ रहती है।

दर्शन-क्रिया के दो भाग

विद्वानों ने दर्शन-क्रिया को दो भागों में विभाजित किया हुआ है—(१) नेत्र की पुतली (Pupil) के द्वारा छाया ग्रहण किया जाना, और (२) मन के द्वारा उस छाया के स्वरूप का निर्णय होना। इससे यह निश्चय होता है कि नेत्र से जो कुछ भी देखा जाता है, उसे देखने मात्र का साधन नेत्र है, परन्तु देखे हुए रूप के विषय में किसी प्रकार का निर्णय लेना नेत्र की सामर्थ्य से बाहर है। उस रूप का निर्णय कि यह मनुष्य है अथवा गाय, भैंस, मकान, घोड़ा, गाड़ी आदि हैं, केवल मन ही कर सकता है। इससे यह समझना कठिन नहीं कि मन का नेत्र आदि पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से बहुत ही निकट का सम्बन्ध है।

यहाँ यह बता देना असामयिक न होगा कि पच ज्ञानेन्द्रिय कौन-कौन सी हैं? नेत्र, श्रोत्र, नासा, जिह्वा और त्वचा, यह पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ ही कहलाती हैं। इनमें से कोई भी इन्द्रिय ऐसी नहीं है जो स्वतन्त्र रूप से कुछ भी कार्य कर सके। उन्हें जो कुछ करना है, उसमें मन से प्रेरणा या निर्देश अवश्य लेना होगा।

फिर ज्ञानेन्द्रिय ही क्यों, पंच कर्मेन्द्रिय भी मन की प्रेरणा के बिना पत्ता भी नहीं हिला सकतीं। यदि मन न चाहे तो पाँव कभी चल नहीं सकता, हाथ कभी कोई कार्य नहीं कर सकता। इसी प्रकार अन्य सभी शारीरिक क्रियाओं के विषय में समझना चाहिए।

नेत्र की अधिक उपयोगिता

शरीर की समस्त इन्द्रियों, यहाँ तक कि सभी ज्ञानेन्द्रियों में भी नेत्र

की ही अधिक उपयोगिता है। कान न सुनें तो नेत्र के सहारे देख कर काम चलाया जाना सरल होता है, जबकि नेत्र न देखें तो सभी कार्यों में व्यवधान उपस्थित हो सकता है। इसलिए यह कहना उचित ही होगा कि नेत्र के बिना रूप का ज्ञान असम्भव है।

नेत्र की रचना भी बहुत अद्भुत है। वह अत्यन्त नाजुक होते हुए भी प्रायः सुरक्षित रहता हुआ अपने कार्य को ठीक प्रकार से करता रहता है। जब तक कि कोई जान-बूझ कर हानि न पहुंचाये तब तक नेत्र का कुछ भी नहीं बिगड़ता।

जब नेत्र और मन का इतना गहरा सम्बन्ध है, तब यह मानना ही होगा कि नेत्र के विकारों में मन की विकृति ही प्रमुख कारण है। नेत्र पर शारीरिक दुर्बलता का उतना कुप्रभाव नहीं पड़ता, जितना कि मानसिक दुर्बलता का पड़ता है। यदि मन खिन्न होता है तो वह न तो कुछ देखना चाहता है, न सुनना, न स्वाद लेना, न सूँघना और न स्पर्श करना। जब मन नहीं चाहता तो इन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषयों से अलग-अलग रही आती हैं, वे उनसे सपर्म्क ही नहीं कर पातीं।

मन के सहयोग बिना नेत्रों की निरर्थकता

इस प्रकार मन के बिना नेत्र नहीं देख सकते। यदि मन अपने को अस्वस्थ अनुभव करता है तो नेत्र भी स्वस्थ नहीं रह पाते। उनकी दर्शन-शक्ति दुर्बल होकर एक ओर पड़ी रहती है और अपने विषय (रूप) को ग्रहण करने से वंचित रह जाती है। इस प्रकार नेत्र का समूचा व्यापार मन पर ही आधारित है।

इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि नेत्र और मन का पारस्परिक सम्बन्ध नियमित रूप से बना रहे, उसमें किसी प्रकार की कोई बाधा उपस्थित न होने पावे। यदि इन दोनों के सम्बन्ध में अपेक्षित तारतम्य

नहीं रहेगा तो कोई न कोई विकार अवश्य ही उत्पन्न होने की सम्भावना रहेगी।

अनेक प्रकार के रोग यथार्थ में रोग न होकर रोग की भ्रान्ति मात्र होते हैं। उनकी उत्पत्ति किसी न किसी मानसिक अस्वस्थता के कारण ही होती है।

यदि आप स्वस्थ रहना चाहते हैं, यदि आपकी इच्छा है कि आप रोगो से बचे रहें तो आपको अपने मन की चंचलता और व्यग्रता दूर करनी चाहिए। उसे शान्त और स्वस्थ रखना चाहिए, जिससे कि नेत्र अथवा किसी अन्य अवयव में कोई विकार उत्पन्न न हो सके।

तनाव की स्थिति का उत्पन्न होना

मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न होने पर तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वह तनाव स्नायु मण्डल में खिचाव उत्पन्न कर देता है। मानसिक तनाव से रस, रक्तवह स्रोतों की क्रिया गड़बड़ हो जाती है। उसके फल स्वरूप शिराओं के मुख पर मल संचित होकर मार्ग को रोक देता है। इस प्रकार उत्पन्न हुआ मार्गाविरोध ही किसी न किसी विकार की उत्पत्ति में कारण बन जाता है।

बहुत बार किंचित् भी तनाव उत्पन्न हुआ कि मन में किसी रोग के उत्पन्न होने की आशंका होने लगती है। बस, वह आशंका ही मनुष्य को रोगी बना देती है। मन जो कुछ सोचता है, वही आन्तरिक विश्वास है। यदि आप धारणा बना लें कि आप पूर्ण रूप से स्वस्थ हैं, आपके नेत्र, कान, मुख आदि किसी भी भाग में कोई दोष नहीं है, तो आपकी धारणा ही आपको रोग-मुक्त रखने अथवा रोग की निवृत्ति करने में एक प्रमुख कारण बन सकती है।

विश्वास किसी भी रोग का एक सबल एवं भरोसे का उपाय हो सकता है। आपको अपना मन शक्की न बनाकर, विश्वास से परिपूर्ण

बनाना चाहिए। समझ लीजिए कि आपका आन्तरिक विश्वास ही आपके रोग का पूर्ण रूप से निवारण करने में समर्थ है। इसलिए मन को स्वस्थ शान्त और विश्वास युक्त बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

चश्मा (ऐनक) और उसका प्रयोग

चश्मा और मनुष्य का व्यक्तित्व

आजकल चश्मे का प्रयोग बढ़ता जाता है। जो लोग दृष्टि की मन्दता के कारण चश्मा लगाते हैं, उनकी बात छोड़ दें तो भी यह कहना पड़ेगा कि बहुत से व्यक्ति अनावश्यक रूप से भी चश्मा लगाने लगे हैं। उनके मत में चश्मा नेत्र ज्योति को तीव्र करने के लिए ही आवश्यक नहीं है, वरन् चेहरे को सुन्दर बनाने के लिए भी आवश्यक है।

यह एक आम धारणा है कि चश्मा लगाने से मनुष्य का व्यक्तित्व निखर आता है। यदि यह मान लें कि असुन्दर चेहरे वाला मनुष्य चश्मा लगा ले तो उसकी असुन्दरता का ऐब छिप जाता है और वह सुन्दर प्रतीत होने लगता है। परन्तु, साथ ही इस सत्य को स्वीकार करना भी अनुचित न होगा कि यदि कोई सुन्दर व्यक्ति चश्मा लगा लेता है तो उसकी सुन्दरता चश्मे के कारण दब जाती है और वह व्यक्ति कम सुन्दर लगने लगता है। यह तथ्य स्त्रियों पर तो और भी अधिक घटित होता है।

इस पर भी चश्मा लगाने की प्रवृत्ति दिनों दिन अधिक होती जा रही है। आज तो बालकपन में ही चश्मा लगाते हुए अनेकानेक व्यक्ति देखे जाते हैं। उसका कारण नेत्र परीक्षकों द्वारा चश्मा लगाने का परा-

मर्श देना है । वे सामान्य से नेत्र-दोष में भी चश्मे का नम्बर दे देते हैं । अनेक नेत्र-चिकित्सालयों में सभी आयु के स्त्री पुरुषों को चश्मा ही अनिवार्य रूप से आवश्यक कह दिया जाता है । इसी का फल है कि आज आठ-दस वर्ष की आयु में भी अनेकों बालक चश्मा लगाते हुए मिलते हैं । जिन बालकों या वयस्कों में भेंगापन होता है, वे चश्मे के प्रयोग द्वारा लाभ भी उठाते हुए देखे जाते हैं ।

प्राचीन समय में चश्मा बूढ़ों के लिए सहारा था

एक युग था, जब यह समझा जाता था कि चश्मा लगाना बूढ़ों के लिए ही उचित है । युवावस्था के स्त्री-पुरुष तो चश्मा लगाने की बात तक से घबराते थे । क्योंकि चश्मा लगाना कम दिखायी देने का एक प्रमाणपत्र समझा जाता था और उस समय कोई भी यह नहीं चाहता था कि उसे कम दिखाई देने वाला समझा जाय ।

परन्तु, वर्तमान युग में चश्मा एक शान का प्रतीक है । उसके बिना प्रायः सभी मनुष्य अपने व्यक्तित्व को अधूरा समझते हैं । परन्तु वे इस तथ्य को नहीं जानते कि चश्मा लगाने से दृष्टि दिनों दिन गिरती चली जाती है, परन्तु उसका पता शीघ्र ही नहीं चलता । जब वर्ष दो वर्ष में फिर कभी नेत्र परीक्षा कराई जाती है, तब ऊँचे नम्बर मिलने से ही इस तथ्य की जानकारी हो पाती है ।

जब चश्मा लगा लिया जाता है, तब उसकी आदत पड़ जाती हैं । यदि पढ़ने (रीडिंग) का चश्मा है तो आदत पड़ने पर बिना चश्मे के पढ़ना कठिन होता है । यदि दृष्टि (साइड) का है तो जब भी न लगाया जायगा, तभी कठिनाई उपस्थित हो जायगी । यदि दृष्टि का चश्मा किसी प्रकार टूट जाय तो एक दिन क्या, क्षण भर भी उसके बिना काम नहीं चल पाता । अनेक व्यक्तियों को देखा है कि वैसे व्यक्ति चश्मे के बिना चलते हैं तो उन्हें साफ दिखाई नहीं देता और कभी कभी तो वे ठोकर खा जाते हैं ।

कुछ लोगों का मत है कि चश्मे का प्रारम्भ सबसे पहिले चीन देश में हुआ। कुछ के विचार में इटली के साधुओं ने तेरहवीं शती में इसका प्रयोग आरम्भ किया। कुछ का यह भी कहनाहै कि चश्मे का सबसेपहिले प्रयोग अलहसन नामक एक अरबी लेखक ने किया था, जो कि ग्यारहवीं शती में हुआ था।

आरम्भ में चश्मे के काचों का निर्माण चकमक पत्थर से हुआ था, इसलिए उस समय उन काँचों को 'पेबिल्स' कहते थे। पेबिल्स के काँचों का निर्माण सन् १८४२ में फ्रांस देश में न्यूरेम्बर्ग ने सर्व प्रथम किया था और उसके बाद उनका बनना इंगलेंड में भी आरम्भ हो गया।

चश्मों के आविष्कार विषयक खोजें

तदुपरान्त चश्मों के निर्माण विषयक खोजें चलने लगीं और उन्हें अधिक से अधिक उपयोगी, सुन्दर और सस्ते बनाने के प्रयत्न आरम्भ हुए। सन् १८८० में 'पेबिल्स' के स्थान पर साधारण काँच के चश्मों का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ। यह अधिक सस्ते, हल्के और विभिन्न आकारों में बनने लगे।

उसके पश्चात् बंजामिन फ्रेंकलिन नामक एक विशेषज्ञ ने चश्मे के विषय में अनेक प्रकार से परीक्षण किये निकट एवं दूर दर्शन के उद्देश्य से दो शीशों के चश्मे (बाई फोकल) का आविष्कार किया। जिसमें यह सुविधा रहती है कि एक ही चश्मे से निकट दृष्टि अथवा पढ़ने और दूर दृष्टि अथवा देखने का कार्य लिया जा सकता है।

चश्मों के अन्वेषण में प्रगति

इसी प्रकार जो अन्वेषण कार्यों में प्रगति हुई, उसके फल स्वरूप अनेक रूप-रंग, आकार-प्रकार और उपयोग की विभिन्नता वाले चश्मों का आविष्कार होता रहा। यही कारण है कि वर्तमान समय में अनेक

प्रकार के आकर्षक चश्मे बाजारों में उपलब्ध हैं। उनके विषय में भी यहाँ कुछ प्रकाश डाल दिया जाय तो अनुचित न होगा।

(१) वृद्धावस्था का आरम्भ होने पर जो दृष्टिमांद्यता उत्पन्न होती है, उसे दूर दृष्टि ('लाँग साइट' अथवा 'प्रेसबायोपिया' कहते हैं। इस दृष्टि माँद्यता में निकट की दृष्टि क्षीण और दूर की दृष्टि तीव्र रहती है। इसमें बाहर की ओर उभरे हुए 'कॉन्वेक्स' काँच के चश्मे प्रयोग में लाये जाते हैं। इनका नम्बर प्लस (धन +) होता है।

(२) जब समीप दृष्टि अत्यधिक कमजोर हो जाती है, तब वह अवस्था 'हाईपर मेटरोपिया' कहलातीं है। इस स्थिति में प्लस नम्बर के ही विशेष प्रकार के चश्मे प्रयोग में लाये जाते हैं।

(३) जब निकट की दृष्टि तीव्र और दूर की दृष्टि मन्द होती है, तब उस अवस्था को निकट दृष्टि ('शार्ट साइट' अथवा 'मायोपिया') कहते हैं। इसमें भीतर की ओर दबे हुए 'कॉन्केव' काँच के चश्मे प्रयोग किये जाते हैं। इनका नम्बर माइनस (ऋण —) होता है।

(४) स्वच्छ मण्डल (कोर्निया) में जब संकोच उत्पन्न हो जाता है तब प्रकाश की किरणें पर्दे पर सीधी नहीं पड़ पातीं, वरन् आगे-पीछे पड़ती हैं। इस कारण सभी वस्तुएँ आकृति में छोटी-बड़ी, टेढ़ी-मेढ़ीं अथवा विकृत प्रतीत होने लगती हैं। वह अवस्था 'एस्टिगमेटिजम' कहलाती है और इसके लिए विशेष प्रकार के चश्मे का प्रयोग बताया जाता है।

(५) जब किसी प्रकार के दृष्टि-दौर्बल्य में विशेष विकृति उत्पन्न हो जाती है, तब प्रत्येक प्रकार के लिए त्रिज्यांश के अनुकूल आकार वाले विशेष कम्पाउण्ड (मिश्रित) नम्बर के चश्मे प्रयुक्त होते हैं।

(६) मोतियाबिन्दु का ऑप्रेशन करते हुए अपार दर्शक हुए लेंस को निकाल देते हैं तथा इस प्रकार बने हुए लेंसों का चश्मा प्रयोग में लाया जाता है जो कि देखने में सुविधाजनक सिद्ध होता है।

(७) रोगी और आहत हुए नेत्रों को धूल, प्रकाश और वायु से बचाना आवश्यक होता है। उस स्थिति में 'गॉगल्स' का प्रयोग किया जाता है, जो कि बिना नम्बर के रंगीन काँच से बने होते हैं।

(८) स्वच्छ मण्डल (कोर्निया) पर एक लेंस चिपकाने की नयी विधि प्रचलित हुई है। इसे 'कॉन्टेक्ट लेंस' कहते हैं। यह स्वयं निकाला भी जा सकता है। इसमें बाह्य चश्मा नहीं लगाया जाता।

(९) एक और प्रकार का 'कॉन्टेक्ट लेंस' भी होता है जो कि ऑपरेशन करके नेत्र के लेंस के ऊपर फिट किया जाता है। यह लेंस बहुत महीन होता है और नम्बर के अनुसार लगाया जाता है। इसमें भी बाह्य चश्मा लगाने का झंझट नहीं रहता।

परन्तु चश्मे का प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए तो उचित रहता है, जिनको प्राकृतिक उपायों को करने के लिए समय ही नहीं है अथवा जिन का शारीरिक स्वास्थ्य इतना गिरा हुआ है कि वे उन उपायों को करने में असमर्थ हैं। जिनका नम्बर बहुत बढ़ गया हो, वे भी इसका उपयोग करें तो कुछ बुराई नहीं है। किन्तु यदि नम्बर अधिक न बढ़ा हो तो चश्मे का प्रयोग आरम्भ न करके प्राकृतिक साधनों को अपनाना ही अधिक उपयुक्त होता है। क्योंकि नम्बरों की वृद्धि को रोकने में प्राकृतिक उपाय अच्छा परिणाम प्रदर्शित करते हैं।

यह तथ्य बहुत से विद्वान स्वीकार करते हैं कि चश्मे के प्रयोग से नेत्रों को स्वस्थ और रोग-रहित नहीं बनाया जा सकता है। यह इस अनुभव से भी स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी वस्तु का यथार्थ रंग नंगी आँखों से जितना साफ देखा जा सकता है, उतना साफ चश्मे के द्वारा नहीं देखा जाता। बिना नम्बर के शीशे भी रंगीन वस्तुओं को यथावत नहीं रहने देते, वरन् उनके रंग में किंचित् परिवर्तन अवश्य दिखाई देने लगता है।

नेत्र दौर्बल्य की परिवर्तनीय अवस्था

नेत्र दौर्बल्य की अवस्था सदैव एक जैसी नहीं रहती। यदि किसी निकट या दूर के 'एस्टिगमेटिजम' के चश्मे से किसी व्यक्ति के नेत्रों में परिवर्तन आ जाता है, तो भी यह पाया गया है कि उसके नेत्रों की दुर्बलता दूर नहीं हो सकी। यह भी सम्भव है कि परिवर्तन आने पर अवस्था में सुधार की अपेक्षा बिगाड़ ही होजाय।

बहुत बार देखा गया है कि चश्मे के प्रयोग से अपेक्षित लाभ नहीं होता। वरन् आरम्भ में तो चश्मा एक जंजाल भी बन जाता है। उससे ठीक दिखाई देने की अपेक्षा चकाचौंध और श्वेतता का सामना करना होता है। किसी-किसी के शिर में दर्द होने लगता है और कोई-कोई तो चक्कर खाकर गिरते हुए भी देखे गये हैं। यह खतरा विशेष कर अधिक ऊँचे नम्बर के चश्मे से अधिक उत्पन्न होता देखा गया है।

अधिक नम्बर के चश्मे का प्रभाव

सभी अनुभवी व्यक्ति यह जानते हैं कि जिन रोगियों को 'मायोपिया' अथवा 'हाईपरमेट्रोपिया' होता है, उन्हें अधिक नम्बर का चश्मा लेना होता है। उनके नेत्रों की अवस्था उस समय से बहुत भिन्न हो जाती है, जिस समय कि उन्होंने सबसे पहिले नम्बर लिया था। अधिक नम्बर के मायोपिया का रोगी जब चश्मे का व्यवहार करता है, तब उसे सामने की वस्तुएं छोटी प्रतीत होती हैं। जबकि हाईपरमेट्रोपिया के रोगी को वे वस्तुएं बड़ी दिखाई देती हैं। परन्तु यह अवस्थायें चश्मे के प्रयोग से तो कभी भी काबू में नहीं आ सकतीं, वरन् अधिक नम्बर के एस्टिगमेंटिजम में तो चश्मे के प्रयोग से नेत्रों की अवस्था पहिले भी खराब हो जाती है।

दिशाओं की दृष्टि (फील्ड ऑफ विजन) तो सभी चश्मों से कम होने लगती है। यह बात दूसरी है कि वह खराबी किसी रोगी में अधिक हो

तो किसी में कम। अति न्यून नम्बर के चश्मों में तभी अधिक साफ दिखाई देता है, जबकि चश्मे के मध्य में ही देखा जाय,

तीव्र प्रकाश में चश्मे का व्यवहार करते हुए कार्य करना और चलना फिरना भी कठिन हो जाता है। बहुत बार तीव्र प्रकाश में सामने का दृश्य यथार्थ दिखाई नहीं देता, क्योंकि चमक के कारण आँखें चौंधिया जाती हैं। अन्धकार हो तो भी चश्मे की अपेक्षा नंगी आँखों से चलने में अधिक सुविधा रहती है।

कभी-कभी चश्मे के प्रयोग से दृष्टि में परिवर्तन भी आ जाता है। कुछ रोगियों को देखा गया है कि वर्ष-दो वर्ष में उनका नम्बर घट गया। परन्तु यह स्थिति भी बहुत ही कम देखी जाती है।

चश्मे का प्रयोग नेत्रों को आराम देने की दृष्टि से भी किया जाता है। परन्तु, यदि दृष्टि में कोई विकार नहीं है और उसमें थकान आदि के कारण सामयिक रूप से विकार उत्पन्न हो गया है, तो बाहरी मांस-पेशियाँ कुछ समय में स्वतः ही आराम की अवस्था में हो जाती हैं, इसलिए उस अवस्था में उन्हें आराम देने की कोई जरूरत नहीं रहती।

चश्मे से तनाव वृद्धि में सहायता

परन्तु, दृष्टि में किसी कारणवश किंचित् दुर्बलता आ जाय तो उस स्थिति में चश्मे का प्रयोग उस दुर्बलता को दूर करने के उद्देश्य से किया जाता है। किन्तु, यह एक मानी हुई बात है कि चश्मा नेत्रों के आन्तरिक तनाव को दूर करने की अपेक्षा तनाव को बढ़ाने में ही सहायक होता है।

कभी-कभी चश्मा लगाने से नेत्र, भौंह और मस्तक आदि में भारीपन का अनुभव होता है। यदि ऐसी स्थिति हो तो यह समझा जाना चाहिए कि नम्बर की भूल से अथवा किन्हीं अन्य कारणों से रोगी को चश्मा अनुकूल सिद्ध नहीं हो रहा है। उस स्थिति में चश्मे का प्रयोग न करना ही हितकर है।

जब नेत्रों की बाह्य पेशियों में तनाव होता है, तब कुछ अजीब-सा लगता है। उसके कारण मन भी तनाव-ग्रस्त हो जाता है, जिसका उपाय चश्मा नहीं हो सकता। उस तनाव को दूर करने में प्राकृतिक साधन अधिक उपयोगी रहते हैं।

वर्तमान समय में दृष्टि की कमजोरी एक सार्वभौतिक रोग के समान फैल गई है। विद्यार्थियों में भी इसकी अधिकता है। गुजरात विश्व विद्यालय के मुख्य स्वास्थ्य अधिकारी ने अपनी १९५३-५४ की रिपोर्ट में जो लिखा था, उसका आशय निम्न प्रकार था—

वर्तमान विद्यार्थियों में नेत्रों की कमजोरी की अधिकाधिक शिकायत पायी जाती है। सभी विद्यालयों के आँकड़े बताते हैं कि प्रायः बीस प्रतिशत विद्यार्थी नेत्रों की कमजोरी के शिकार हैं। ऐसे विद्यार्थियों को चश्मे का परामर्श दिया जाना ही पर्याप्त नहीं है। इस विषय में नेत्र-विशेषज्ञों को मार्ग दिखाना चाहिए कि क्या उन्हें चश्मे के प्रयोग से रोका जा सकता है? डॉ० बेट्स का दावा है कि लगाये हुए चश्मे उतारें जा सकते हैं। आल्ड्स हक्सले प्रभृति विख्यात एवं बुद्धिमान लेखक ने इस विषय पर 'दी आर्ट ऑफ सीयिंग' नामक पुस्तक लिखकर जो कृतज्ञता दिखाई है, उसके कारण भी हम इस पद्धति का तिरस्कार नहीं कर सकते। इंगलैंड के विख्यात नेत्र-विशेषज्ञ सर स्टुअर्ट ड्यूक एडलर द्वारा भी इस पुस्तक का उल्लेख किया जाने से इस कथन की पुष्टि होती है कि लगा हुआ चश्मा उतारा जा सकता है।

सन् १८५४-५५ की रिपोर्ट में उनका कहना था कि विश्व विद्यालय में प्रवे पाने के पश्चात् लगभग ९४ प्रतिशत विद्यार्थियों की दृष्टि उत्तरोत्तर बिगड़ती गई है, जिसके फल स्वरूप चश्मा लगाने वाले विद्यार्थियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जारही है।

चश्मे का आरम्भिक प्रभाव

इस प्रकार चश्मे का प्रयोग आये दिन बढ़ता रहा है। आरम्भ में

चश्मा लगाने वाले को ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी दृष्टि सम्बन्धी परेशानी दूर हो गई है; परन्तु धीरे-धीरे उन्हें चश्मा एक झंझट प्रतीत होने लगता है। क्योंकि उसे बार-बार धूल-धक्कड़ या पसीने आदि के कारण साफ करना होता है। बहुत बार चश्मा कहीं भूल आने या उसके टूट जाने से भी बड़ी असुविधा होती है। साथ ही एक यह विकृति भी उत्पन्न हो जाती है कि निरन्तर चश्मा लगाये रहने के फल स्वरूप नेत्रों की स्वाभाविक दर्शन-शक्ति का ह्रास होने लगता है, इस कारण मनुष्य सदा के लिए चश्मे के अधीन हो जाता है और उसके फल स्वरूप चश्मे के नम्बर में भी वृद्धि होती रहती है।

चश्मे का मिथ्या समर्थन

चश्मा लगाने का समर्थन करने वाले कुछ चिकित्सक उससे दृष्टि का तीव्र हो जाना मानते हैं, परन्तु बात ऐसी नहीं है। चश्मा लगाने से दृष्टि तीव्र होने की अपेक्षा और बिगड़ जाती है। यह तथ्य कुछ छिपा हुआ नहीं है कि यदि ऐनक लगाने से दृष्टि में तीव्रता आ गई होती तो ऐनक उतारने पर वह तीव्रता कहाँ चली जाती?

यदि किसी रोगी को किसी प्रकार यह विदित होजाय कि चश्मे से अपेक्षित लाभ के स्थान पर हानि ही होती है तो वह चश्मा लगाना कभी भी पसन्द नहीं करेगा। परन्तु वर्तमान समय में रोगी चश्मे के लिए इसीलिए दौड़ते हैं कि प्रथम तो चश्मे के गुणों का अधिक ढिंढोरा पीटा जाता है और उस पर भी वह साधन कुछ सरल प्रतीत होता है।

यदि कोई चाहे कि उसे चश्मे से होने वाली हानियों का शिकार न होना पड़े तो उसे धैर्य से काम लेना होगा। यदि आप प्राकृतिक उपायों का सहारा लें तो कोई कारण नहीं कि आपको चश्मे की आवश्यकता का किंचित भी अनुभव हो सके।

यदि आप चश्मा लगाते हैं और प्राकृतिक उपाय करने के लिए

इच्छुक हैं तो यह आवश्यक नहीं कि आपको चश्मा तुरन्त ही उतारना पड़े। उस स्थिति में आप चश्मा भी लगाते रहें और उपाय भी करते रहें। इससे आपके चश्मे का नम्बर धीरे-धीरे घटने लगेगा। इसके लिए आप एक निश्चित अवधि में आँखों की जाँच कराते रहकर कम नम्बर प्राप्त करते रह सकते हैं। इस प्रकार चश्मे का नम्बर घटते-घटते स्वतः ही सामान्य हो सकता है।

कुछ चिकित्सक हर समय चश्मा लगाये रखने का परामर्श देते हैं, जो कि उचित नहीं। प्राकृतिक उपचार के साथ चश्मा भी लगाये रखना चाहते हैं तो आप केवल पढ़ने-लिखने अथवा कोई ऐसा कार्य करने के समय जो कि चश्मे के बिना हो ही न सके, उसे लगा सकते हैं। किन्तु हर समय चश्मा लगाये रखना अवश्य ही हानिकारक है। खास कर उस समय जबकि व्यायाम आदि के रूप में कोई प्राकृतिक साधन कर रहे हों चश्मे का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए।

यदि आप हर समय चश्मा लगाने के अभ्यस्त हैं तो भी बिना चश्मा रहने का प्रयत्न करें। और कुछ नहीं तो प्रारम्भ में केवल १०-१५ मिनट के लिए ही चश्मा उतारने का अभ्यास करें और फिर उसका समय बढ़ाते जाँय। दो-चार दिन १५ मिनट तो दो-चार दिन ३० मिनट उसके पश्चात् एक घण्टा, फिर दो घन्टा ऐनक-रहित नंगी आँखों से रहें। ऐसा करते हुए आप देखेंगे कि सामने का दृश्य पहिले से अधिक साफ दिखाई दे रहा है।

यदि आप इसी प्रकार करते रहें तो कुछ सप्ताहों में ही प्राकृतिक उपचारों से आश्चर्यजनक रूप से लाभ होता दिखाई देगा। उस समय लगेगा कि ऊँचे नम्बर का चश्मा अनावश्यक है और तब नीचे नम्बर का चश्मा लगाने की आवश्यकता होगी। इस प्रकार चिकित्सा का यह नया ढँग बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। इसके द्वारा चश्मा से छुटकारा मिलना भी सरल होजाता है।

प्राकृतिक उपचारों से रोग दूर होने में लगने वाले समय को निश्चयात्मक रूप से बताया जाना कठिन है । क्योंकि समय तो रोग की तीव्रता और साधनों की उत्कृष्टता पर निर्भर करता है । यदि रोग अधिक तीव्र है तो रोग निवारण में देर लगना स्वाभाविक ही है । उसमें भी रोग की तीव्रता के साथ साधन भी उत्कृष्ट है, रोगी उसके अभ्यास में परिश्रम भी करता है तो रोग-निवृत्ति में वहुत विलम्व नहीं लगना चाहिए ।

रोग निवारण में विलम्ब का सिद्धान्त

इसके विपरीत, रोग के अधिक तीव्र न होने पर भी यदि साधन कम उत्कृष्ठ है और अभ्यास में परिश्रम भी कम ही किया जाता है तो उसके फल स्वरूप रोग निवारण में अधिक विलम्व लगाना भी अस्वाभाविक नहीं है ।

रोग के दूर होने में धैर्य की आवश्यकता होती है । चश्मा लगाने पर रोगी समझता है कि मेरी दृष्टि बिना किसी प्रयत्न और बिना विलम्ब के तीव्र होगई है । परन्तु दृष्टि तीव्र होने की वह प्रतीति उसी प्रकार की है जिस प्रकार कि कोई व्यक्ति अपने सफेद बालों को काले करने के उद्देश्य से खिजाब लगा ले । जैसे खिजाव बालों को काले करने का स्थायी उपाय नहीं है, वैसे ही चश्मा भी नेत्र-विकार दूर करने का स्थायी उपचार नहीं हो सकता ।

इसके लिए इसी पुस्तक में लिखे गए प्राकृतिक उपचारों का सहारा लेना सर्वश्रेष्ठ उपाय है । मिट्टी, पानी, नेति, धौति, आसन, प्राणायाम, धूप, पामिंग, ठण्डे पानी से नेत्रों का धोया जाना, नेत्रों को जल्दी-जल्दी वन्द करना-खोलना आदि विधियों का प्रयोग तथा सन्तुलित आहार, व्यायाम आदि को करते हुए धीरे-धीरे चश्मे को ही नहीं छोड़ा जा सकता, वरन् नेत्रों को पूर्ण रूप निरोग बनाया जा सकता है ।

नेत्रों में विकार के विभिन्न कारण

नेत्रों में विकार उत्पन्न होने के अनेक कारण हैं, जिन पर सामान्य रूप से ध्यान नहीं दिया जाता। बहुत बार छोटे कारण भी बड़े दोषों को उत्पन्न कर डालते हैं। बहुत-सी बातें साधारण समझ कर दृष्टि से उतार दी जाती हैं, परन्तु वे ही धीरे-धीरे अत्यन्त दुःख देने वाली बन जाती हैं।

नेत्र विकार का प्रमुख कारण मन का विकारग्रस्त होना

नेत्रों में विकार का प्रमुख कारण तो मन का विकारग्रस्त होना है, इस पर अन्यत्र प्रकाश डाला जा चुका है। दूसरा कारण असन्तुलित और अप्राकृतिक आहार है, जिसके विषय में अनेक कारणों से उपेक्षा की जाती है। उन कारणों में जिह्वा का चटोरापन भी हो सकता है और पकाने से उत्पन्न गुणावगुण की जानकारी का न होना भी हो सकता है। उसके पश्चात्, जो तीसरा कारण है, वह है नेत्रों की सफाई के प्रति उपेक्षा। जैसे समूचे शरीर की सफाई की जाती है, वैसे ही नेत्रों की सफाई भी की जानी चाहिए, जो कि धोने की विधि अपनाने से सम्पन्न हो सकती है।

नेत्रों को धोने का कार्य

वैसे तो नेत्रों का धोया जाना स्नान अथवा मुख धोने के साथ स्वतः सिद्ध हो जाता है, क्योंकि जो लोग नित्य प्रति स्नान नहीं करते, वे भी मुख तो धोते ही हैं। परन्तु नेत्रों को धोने की सही विधि सम्भवतः बहुत कम व्यक्ति जानते होंगे। इस विषय में भी इस पुस्तक में अन्यत्र प्रकाश डाला गया है।

वस्तुत: नेत्रों को धोने का कार्य शिशु काल से ही आरम्भ हो जाना चाहिए। माता का कर्तव्य है कि वह अपने शिशु की आँखों के प्रति सावधानी से काम लें। जब पड़ा पड़ा बालक ऊब जाता है, तब रोने और आँखों को मलने लगता है, उससे उसकी आँखें खराब हो सकती हैं। इसलिए जहाँ तक सम्भव हो, बालक जैसे ही रोना आरम्भ करे, उसे चुप करने का प्रयत्न करना चाहिए।

बालक ज्यों ही सोते से उठे, त्यों ही उसकी आँखों की सफाई कर दी जाय तो उससे उसकी आँखों में कोई दोष उत्पन्न नहीं होगा। सफाई इस प्रकार की जाय कि आँखों में लगा हुआ मल तो दूर हो जाय परन्तु आँखों पर दवाब बिल्कुल भी न पडे।

आँखें साफ करने के लिए ठण्डे पानी का प्रयोग करना चाहिए। शीत ऋतु हो या ठण्ड के कारण आँखें दुखनी आगई हों तो गर्म पानी का भी प्रयोग कर सकते हैं। अच्छा हो कि उस स्थिति में थोडा सुहागे का फूला अथवा बोरिक एसिड डाल लिया जाय। इससे आँखों के दर्द, लाली और सूजन में भी लाभ होजाता है।

आँखें साफ करने की उक्त विधि का प्रयोग बालकों के लिए ही नहीं वयस्कों के लिए भी लाभकारी होता है। स्त्री, पुरुष, वृद्ध आदि सभी इसका उपयोग कर सकते हैं। विद्वानों की मान्यता है कि आँखों की सफाई के प्रति लापरवाही करने से आंखों के अनेक रोग उत्पन्न होजाते हैं, इसलिए इसके प्रति उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

सूर्योदय के पश्चात् जागने से नेत्र-दोष की उत्पत्ति

नेत्र-दोषों के अन्य कारणों में एक कारण सूर्योदय होने के बाद जागना है। अनेक व्यक्ति प्रातःकाल आलस्य में पड़े रहते हैं और सूर्योदय के बाद उठते हैं। इसका प्रभाव उनके नेत्रों पर बहुत प्रतिकूल पड़ता है।

उसका कारण यह है कि सूर्योदय के बाद जागने वाले मनुष्यों को प्रकाश का एक दम सामना करना होता है, जो कि आँखों के लिए बहुत ही अहितकर है। यदि सूर्योदय से पहिले उठा जाता है तो आँखों को अँधेरे से धीरे-धीरे प्रकाश की प्राप्ति होती है, जो कि एक अनुकूल क्रम है। इसीलिए जो लोग सूर्योदय से पहिले जागते हैं, उनकी आँखें दोष-रहित रहती हैं।

नेत्र-विकार का एक कारण जागने पर आँखों का न धोया जाना भी है। निन्द्रा की स्थिति में पलकों का झपकना रुका रहता है, इसलिए आँखों का मल बाहर नहीं निकल पाता। उस संचित मल को साफ करने के लिए जागते ही ठण्डे पानी से आँखें धोनी चाहिए। परन्तु इस प्रकार कि पानी आँखों के भीतर जा सके। यह क्रिया आँखों में २०-२५ छींटें मारने से पूरी हो सकती है। अच्छा तो यह है कि बाँयी हथेली में पानी भर कर खुली बाँयी आँख उसमें की जाय और दाँयी हथेली से यही क्रिया दाँयी आँख में की जाय। ऐसा करने से आँखों में पानी पहुंच कर वहाँ के समूचे मैल-मक्कड़, कीचड़ आदि को बाहर निकाल देता है।

तीव्र प्रकाश का प्रतिकूल प्रभाव

बिजली के तीव्र प्रकाश में अधिक देर पढ़ते रहने से आँखें खराब हो जाती हैं। इसके विपरीत, अपेक्षाकृत मन्द प्रकाश में पढ़ना भी हानि-कारक होता है। जो लोग सिनेमा देखने में अधिक दिलचस्पी लेते है, उनकी भी आँखें दोष-युक्त हो जाती हैं।

पढ़ने-लिखने के समय सामने की ओर का प्रकाश हानिकारक होता है, इसलिए जहाँ तक सम्भव हो पीछे की ओर से प्रकाश आने की व्यवस्था करनी चाहिए।

बिजली के तीव्र प्रकाश की ओर या सूर्य की ओर टकटकी लगाने से भी आँखें खराब हो जाती हैं। विद्वानों के मत में ग्रहण को देखना भी अहितकर है। उससे भी नेत्रों की ज्योति कम हो जाती हैं।

झुक कर अथवा लेट कर पढ़ना भी आंखों को खराब करने में एक प्रमुख कारण होता है। सीधे और समान रूप से बैठ कर ही पढ़ना चाहिए।

बहुत निकट से पढ़ना भी अहितकर होता है। पढ़ने-लिखने में लगभग २५-३० सेन्टीमीटर की दूरी होनी चाहिए। जो लोग बहुत पास से पढ़ते हैं, उन्हें वैसा ही अभ्यास हो जाता है, जिसका छूटना कठिन होता है। इसलिए चेष्टा की जाय कि वैसी आदत ही न पड़ सके।

चटपटे भोजन से नेत्र विकृति

अधिक नमक, मिर्च युक्त चटपटे भोजन भी नेत्रों को दूषित कर देते हैं। मैदा आदि की बनी हुई मिठाई, पकवान तथा खोये के बने हुए पदार्थ भी नेत्र रोगों को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

अकारण ही साधारण प्रकार के धूप के चश्मे लगाना भी नेत्रों की हानि पहुँचाता है। ध्यान रहे कि उन चश्मों का रङ्ग प्राकृतिक न होने के कारण प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना नहीं रहता।

तेज धूप से भी आंखें प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती हैं। ग्रीष्म-ऋतु में जब तीव्र धूप में चलना आवश्यक हो तब शिर पर तौलिया डाल लेना हित कर रहता है।

धूल धुँए से नेत्रों को हानि

नेत्रों को धूल और धुँए से बचाना बहुत आवश्यक है। यदि धूल एवं धुँआं भरे स्थान में चलना आवश्यक ही हो तो इस प्रकार की सावधानी रखें कि वह आंखों में प्रविष्ट न हो सकें।

लिखने-पढने अथवा किसी दृश्य के निरन्तर देखने से आंखों में थकान उत्पन्न हो जाती है, जिसके फल स्वरूप कोई भी नेत्र-रोग उत्पन्न हो सकता है। इसलिए आंखों को विश्राम देना बहुत आवश्यक होता है। बीच-बीच में पलकों को झपझपाते रहने से नेत्रोंको विश्राम प्राप्त होता है।

इसलिए जब तब आँखों को बन्द करने, खोलने की क्रिया करते रहना चाहिए।

अधिक थकान या जलन का अनुभव हो तो पलकों को तेजी से बन्द करें और खोलें अथवा जोर से भीचें और खोल लें। यह क्रिया बीच-बीच में करते रहने से थकान और जलन मिट जाती है।

पामिंग भी थकान मिटाने का एक अच्छा उपाय है। दोनों हाथों की हथेलियों को पामिंग में बतायी हुई विधि से ४-५ मिनट तक आंखों पर रखे रहना चाहिए। इससे लाली और दर्द में भी लाभ होता है।

हर समय चश्मा लगाये रहना भी नेत्र-दोष उत्पन्न होने में कारण बन जाता है। जिन लोगों को चश्मा लगाने की आदत ही हो, उन्हें भी बीच-बीच में चश्मा उतार कर आंखों को अपेक्षित विश्राम देना चाहिए।

अन्य व्यक्ति का चश्मा प्रयोग करने का निषेध

यह भी ध्यान रहे कि किसी दूसरे का चश्मा न लगाया जाय यदि लगाना ही पड़े तो उसके काँचों को ठीक प्रकार से पोंछ डालें और तब प्रयोग में लावें।

किसी भी वस्तु को तौर बांध कर देखना भी आंखों में गड़बड़ी उत्पन्न कर देता है। क्योंकि वैसा करने से नेत्रों की पेशियों पर दबाव पड़ता है, जो दृष्टिमांद्य एवं दर्द आदि की उत्पत्ति में एक कारण बन जाता है। इसलिये दृष्टि गाढ़ कर किसी भी वस्तु को न देखना ही श्रेयस्कर है।

भयावह स्थान में रहना भी नेत्रों के लिये हानिकारक है। क्रोध, शोक या चिन्ता आदि से ग्रस्त रहने का प्रभाव भी कुछ अच्छा नहीं पड़ता। इसलिए इन कारणों से अवश्य बचना चाहिए।

अधिक विषयोपभोग शारीरिक दौर्बल्य में तो कारण है ही, नेत्रों को भी खराब देता है। उससे शरीर में रक्ताल्पता होकर नेत्रों को भी अपे-

क्षित मात्रा में रक्त प्राप्त नहीं हो पाता। इसलिए संयम से रहना या ब्रह्मचर्य पालन करना बहुत आवश्यक होता है।

मैले-कुचैले स्थान का कुप्रभाव

अंधेरे या मैले-कुचैले स्थान में रहने से भी नेत्रों में खराबी आ जाती है। जिस घर में सूर्य की किरणें कभी भी नहीं पहुंचतीं, वह घर रोगों का भण्डार ही समझना चाहिए। विशेष रूप से नेत्रों के लिए सूर्य की किरणों में प्रकाश देने की शक्ति है, इसलिये भी ऐसे स्थान में नहीं रहना चाहिए। अथवा उससे बचने के लिये कभी-कभी खुले वातावरण में रहने से भी धूप के अभाव की पूर्ति की जा सकती है।

कब्ज से भी अनेकों नेत्र-रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये ऐसा प्रयत्न करते रहना चाहिये कि कब्ज उत्पन्न न हो अथवा उत्पन्न हो जाय तो उसे उपाय द्वारा दूर करने की चेष्टा की जाय। खान-पान में सुधार करके कब्ज को आसानी से नष्ट कर सकते हैं।

शिर-दर्द से भी नेत्र-दृष्टि क्षीण हो जाती है, इसलिए शिर दर्द उत्पन्न हो गया हो तो उचित उपाय द्वारा उसे दूर किया जाना आवश्यक है।

सीने पिरोने की विधियाँ

जैसे सीना-पिरोना एक कला है, वैसे ही उस समय दृष्टि से काम लेने की भी एक कला है। यदि उसमें ठीक ढङ्ग से कार्य नहीं लिया जाता तो बहुत बार आंखों से पानी गिरने या शिर दर्द होने तक की परेशानी उत्पन्न हो जाती है।

उसका प्रमुख कारण सीते-पिरोते समय दृष्टि एक स्थान पर जमी रहती है तथा पलकों को विश्राम नहीं मिल पाता। इस कारण कष्ट का अनुभव होने लगता है।

यदि दृष्टि को एक स्थान पर जमी हुई न रखें और बार-बार पलकों को झपकाते रहें तो किसी बार हटा लेना चाहिए।

पढ़ने-लिखने की विधियां

पढ़ने लिखने के समय भी आंखों में दर्द, अश्रुपात तथा शिर-दर्द आदि का अनुभव होने लगता है। उसका प्रमुख कारण पढ़ने-लिखने की गलत विधि ही विशेष रूप से है।

यदि पढ़ते-लिखते समय प्रकाश अधिक तीव्र हो अथवा अधिक कम हो तो तो नेत्रों पर जोर पड़ता है। पुस्तक को लेट कर पढ़ना भी अत्यन्त कष्ट कारक है। अथवा लेटी हुई अवस्था में पुस्तक को ऊपर करके पढ़ना भी हानिकारक है। यदि पलक झपकाये बिना पढ़ते रहें तो भी दृष्टि कमजोर होती तथा अनेक नेत्र रोग हो सकते हैं।

पढने-लिखने की सही विधि यह है कि सीधे, समान रूप से बैठकर पुस्तक या कापी को ठोड़ी से नीचे रखें। अभिप्राय यह है कि पुस्तक या कापी प्रायः २५-३० सेन्टीमीटर की दूरी पर रहनी चाहिए। पढ़ते समय यह ध्यान रखा जाय कि पढ़े हुये अक्षरों को न पढ़ें और नेत्रों को एक ओर से दूसरी ओर न हिलाकर अक्षरों के साथ शिर को हिलाना चाहिए।

बीच-बीच में पलक झपकाने की क्रिया अवश्य करते रहें। नेत्रों में थकान या दर्द का अनुभव हो तो नेत्रों को ठन्डे पानी से धोवें और पूर्ण विश्राम दें।

चित्रों को देखने की विधियां

मनोहर दृश्यों वाले चित्रों के देखने से नेत्रों को बड़ा आराम मिलता है। परन्तु उसकी गलत विधियों से अनेक प्रकार के नेत्र दोष उत्पन्न हो जाते हैं। नेत्रों को अधिक खुले रख कर और पलकों को न झपका कर चित्र को देखते रहना हानि कारक होता है। ठोड़ी को नीचे झुका कर और पलकों को ऊपर की ओर उठा कर देखना भी अनुचित है। कुर्सी पर बैठकर आगे की ओर झुककर देखना भी कष्ट कर रहता है। मानसिक अशान्ति हो तो भी चित्र देखना अनुचित है।

चित्र को बहुत निकट से अथवा बहुत दूर से नहीं देखना चाहिए। उतनी दूरी से देखें, जितनी से कि ठीक प्रकार से देखा जा सके। कुर्सी पर आराम से बैठकर शिर को थोड़ा सा उठा हुआ रख कर देखना चाहिये। बीच-बीच में पलकों को हल्के-हल्के झपकाते रहें। साथ ही मन को शान्त और स्वस्थ रखें। इस विधि से चित्र देखना बहुत लाभकारी रहता है। इससे नेत्र दृष्टि तीव्र हो जाती है।वर्णान्ध्य कलर ब्लाइन्डनैस के रोगियों को टैफ्नीकलर चित्र देखना लाभकारी होता।

ग्रहण देखने की उचित विधि

ग्रहण पड़ते समय सूर्य शक्ति में सर्जनात्मकता की कमी हो जाती है, इस कारण उसने देखना उचित नहीं समझा जाता। फिर भी अनेक व्यक्ति ग्रहण करते समय सूर्य को देखने का प्रयास करते हुए यह देखते हैं कि सूर्य कितना दबा है? अथवा उसकी अन्तिम अवस्था में यह देखते हैं कि सूर्य निर्मल हुआ या नहीं?

उस समय कुछ व्यक्ति आंखों के आगे अंगुलियांकरके उनकी झिरियों से सूर्य को देखते हैं तो कुछ लोग नङ्गी आंखों से ही देखने का प्रयत्न करते हैं। जो लोग रङ्गीन कांच के माध्यम से सूर्य को को देखते हैं, यदि उनका कांच अधिक गहरा नहीं होता तो वे अनेक प्रकार के नेत्र-दोषों के शिकार हो जाते हैं।

यदि सूर्य ग्रहण की प्रतिकूलता का प्रभाव कम पड़ता है तो सामान्य दृष्टि-दोष हो सकता है। परन्तु अधिक प्रभाव पड़ने पर नेत्रों में जलन, दर्द, लाली, दृष्टिमांद्य, अश्रुस्राव आदि विकृतियाँ हो सकती हैं। कुछ लोगों को इसके विपरीत प्रभाव से दिवान्ध्य या रात्र्यान्ध जैसी भीषण व्याधियां लगती हुई देखी गई हैं।

यदि सूर्य ग्रहण के समय सूर्य को घोर काले रङ्ग के चश्मे से देखें तो उसका हानिकारक प्रभाव नहीं होता। अथवा किसी परात या तसले

में काले या नीले रङ्ग का पानी भर कर उसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब देखें तो भी आंखें ठीक बनी रह सकती हैं।

सूर्य ग्रहण से दूषित आंखों को ठीक करने के उपाय

यदि गलत विधि से सूर्य को देखने के कारण नेत्रों में कोई रोग उत्पन्न हो तो आंखों पर मिट्टी की, आटे की अथवा मलाई की पट्टी बांधने से लाभ हो सकता है। ऐसी पट्टी रात में सोते समय बांधें और प्रातकाल जागने पर तुरन्त खोल दें। यह उत्तम उपाय है।

उक्त उपचार के साथ ही दिन में नित्य प्रति ३-४ बार ठण्टे पानी से आंखों को धोवें और प्रातःकाल सूर्यात्मक व्यायाम अथवा पामिंग की क्रिया करते रहें।

अथवा चांदनी रात हो तो खुले नेत्रों से कुछ देर तक चन्द्रमा को देखना अधिक लाभकारी हैं चन्द्रदर्शन की क्रिया के पश्चात् आंखों को ठण्डे पानी से धो लेना चाहिए।

पलकों को सही रूप में रखने की विधियां

पलकों को भी ठीक प्रकार से रखने की आवश्यकता होती है। पलकों को न चलाकर दृष्टि को स्थिर रखना अर्थात् किसी वस्तु या दृश्य को टकटकी लगा कर देखना बहुत हानिकारक होता है। परन्तु, कुछ लोगों को इस प्रकार से देखने की आदत पड़ जाती है। परन्तु, उन्हें समझ लेना चाहिए कि ऐसे व्यक्तियों की आंखों में थकान, अश्रुपात, लाली अथवा जलन आदि की प्रतीति हो तो उसका मुख्य कारण टकटकी लगा कर देखने की आदत का होना ही है।

पलकों के ठीक स्थिति में रहने के लिए यह आवश्यकहै कि ठोड़ी को कुछ उठी हुई और पलकों को कुछ झुके हुए रखा जाय। यह भी ध्यान रहे कि पलक बार-बार हल्के-हल्के झपकते रहें। यदि इस विधि का पालन किया जाता रहे तो नेत्र-दोषों के उत्पन्न होने से बचा जा सकता है।

टकटकी लगाकर देखने से उत्पन्न शिर-दर्द का उपचार–

पलकों को झपकाये बिना देखते रहने से शिर दर्दके रूप में भी एक कष्ट उत्पन्न हो जाता है। यदि ऐसी स्थिति हुई तो तो उसे निम्न उपायों से दूर किया जा सकता है।

रात्रि में १० वजे तक सो जाना और प्रातःकाल ५ वजे तक उठ आना चाहिये। वहुत रात गये सोने और प्रातःकाल देर तक सोते रहने से यह विकृति अधिक बढ़ जाती है।

रात्रि में जागना और दिन में सोना भी इस व्याधि का एक कारण हो सकता है। अधिक जागरण से भी नेत्रों में थकान बढ़ जाती है और उसके साथ ही शिरदर्द हो जाता है।

निकट या दूर की वस्तुओं को तौर बांध कर देखने से भी शिरदर्द हो जाता है। अधिक सिनेमा देखने से भी अनेक नेत्र-दोष और दृष्टिमांद्य तथा शिरदर्द हो जाता है।

इन सव कारणों को दूर करने से रोग की निवृत्ति हो सकती है। प्रमुख उपाय ठीक प्रकार से देखना और बार-बार पलकों के झपकाने की क्रिया करते रहना उचित होता।

रेल-यात्रा में नेत्रों का रख रखाव

रेल या बस की यात्रा में नेत्रों की सुरक्षा का ध्यान रखना बहुत आवश्यक होता है। रेल में यदि कोयले से चलने वाला इंजिन होता है तो उससे कोयले के छोटे-छोटे कण निकल कर पीछे की ओर उड़ते हैं और यदि कोई यात्री अपने डिब्बे की खिड़की के सहारे रेल के चलने की दिशा में मुख किये होता है तो कोयले के वे कण आंखों में जा गिरते हैं।

वे कण आँखों में जाकर बड़ा दुःख देते हैं। उनके कारण आंखों में

खड़का मारना, लाली उत्पन्न हो जाना तो साधारण बात है। साथ ही आंख में घाव भी हो सकते हैं।

इनसे बचने के लिए जहाँ तक सम्भव हो ऐसे स्थान पर बैठना चाहिए, जहां से मुख गाड़ी चलने की विपरीत दिशा में रहे। यदि गाड़ी चलने की दिशा में मुख करके बैठना ही पड़े तो खिड़की बन्द कर लें या मुख को इस प्रकार रखें कि आँख कोयले का कण गिरने न पाये।

यदि कण गिर भी जाय तो किसी मुलायम वस्त्र के छोर को आंख में डाल कर उससे कण को निकालने का प्रयत्न करें यदि स्वयं निकालने में असफल हों तो किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता लेनी चाहिए।

आँखों में मच्छर पड़ जाना

बहुत बार, चलते समय आंखों में मच्छर आ पड़ता है, वह भी उतना ही दुःखदायी होता है, जितना कि कोयले का कण। यदि चलते में मच्छर गिर गया हो तो तुरन्त रुक कर पीछे की ओर उल्टे चलने लगें। इससे मच्छर स्वतः निकल जाता है। यदि इस विधि से न निकले तो फिर किसी मुलायम वस्त्र के छोर से अथवा रुई की बत्ती-सी बना कर उसके सहारे निकालना चाहिए।

सिनेमा देखने की ठीक विधि

यदि कभी सिनेमा देखने की इच्छा हो और हाल में जाकर बैठजांय तो ध्यान रखें कि उसे इस प्रकार से देखें कि आँखों पर कोई जोर न पड़े, अन्यथा दृष्टि कमजोर हो सकती है।

सिनेमा देखने की सही विधि यह है कि सब से पीछे की ओर वाली पंक्ति के मध्य में बैठने का प्रयत्न करें, जिससे कि सामने की ओर सीधी दृष्टि रखकर ही उसे देख सकें। पंक्त में एक कोने पर बैठने से दृष्टि को तिरछी करके देखना होगा, जो कि नेत्र-दोष की उत्पत्ति में सहायक होगा। यह भी ध्यान रहे कि सिनेमा सदैव ऊँचे दर्जे में बैठकर देखें।

सब के नीचे के दर्जे में तो कभी न बैठें, क्योंकि वह सब से आगे होगा है, जिससे नेत्रों पर दृश्य का विपरीत प्रभाव पड़ता है।

नेत्रों का स्वास्थ्य और भोजन

नेत्र रोगों का कारण अनियमित आहार

भोजन का प्रभाव समूचे शरीर पर पड़ता है, इसलिये नेत्रों को स्वस्थ रखने के लिये भोजन भी उनके अनुकूल रहना चाहिए। बहुत से उन मनुष्यों को देखते हैं, जिनका आहार अनियमित और अप्राकृतिक रहता है, इस कारण वे विभिन्न रोगों के शिकार बने रहते हैं। उन रोगों में नेत्र-रोग भी सम्मिलित हैं। जो लोग आहार में सयम रखते हैं। उनकी दर्शन शक्ति और श्रवण शक्ति तीव्र रहती है। ऐसे लोग नेत्र तो क्या, सभी रोगों से बचे रहते हैं।

प्रतिकूल आहार से दृष्टि क्षीण हो जाती है। नेत्रों के केश कण्डुलम (बाल जैसे उड़ते दिखाई देना)प्रभृति रोग, मोतियाबिन्दु, दिवान्ध्य, रात्र्यान्ध, दृष्टिमांद्य एवं इसी प्रकार के अन्यान्य रोग मिथ्या आहार-विहार के कारण अधिक उत्पन्न होते हैं। वैज्ञानिक मान्यताओं के आधार पर यह कहना अत्युक्ति पूर्ण नहीं होगा कि वर्तमान समय में अन्धों की संख्या वृद्धि का प्रमुख कारण अन्य को अप्राकृतिक रूप में भक्षण करना ही है।

आहार में नेत्र रक्षक विटामिन्स का समावेश

दैनिक भोजन में उन पदार्थों का सेवन करना बहुत आवश्यक है, जिनमें नेत्रों के लिये हितकर विटामिन्स समाविष्ट हों यदि इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता तो भी अनेकों नेत्र रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

नेत्रों के लिये हितकारी विटामिन्स हैं ए, बी., सी. और डी. जिन पदार्थों में इन विटामिन्स की विद्यमानता हो, उनका सेवन किया जाता रहे तो नेत्र नोग उत्पन्न होने की बहुत कम आशङ्का रहती है। इसलिए यहां उन पदार्थों पर भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

विटामिन 'ए'

यह विटामिन प्रायः फलों और हरी तरकारियों में अधिक पाया जाता है। पत्ती वाले शाकों में भी इसका समावेश रहता है, जैसे कि पालक आदि में। गोभी के पत्तों में, ककड़ी, खीरा, कुम्हड़ा, टमाटर, शकरकन्द, गाजर, शलजम आदि शाकों एवं सन्तरा, केला, अनन्नास आदि फलों में भी इसकी प्रचुरता रहती है। गाय के दूध एवं में मक्खन के द्वारा भी इसे प्राप्त कर सकते हैं।

विटामिन 'बी'

यह विटामिन भी सन्तरा, अनन्नास, ककड़ी, गाजर, शलगम आदि से प्राप्त किया जा सकता है। पातगोभी और फूलगोभी दोनों में इसकी उपलब्धि है। सोयाबीन, मुनक्का, किशमिश, मटर, दूध एवं खमीर में इसकी प्रचुरता होती है। गेहूँ के चोकर अथवा चोकर समेत आटे तथा हाथ के कटे हुए कण-युक्त चावल में भी इसका समावेश है।

विटामिन 'सी'

खट्टी वस्तुओं में यह विटामिन अधिक रहती है। नीबू सन्तरा, आम आदि फलों से इसे प्राप्त कर सकते हैं। हरा आमला तो इसका भण्डार ही है। सरसों की पत्तियों, शलगम की पत्तियों, इमली की पत्तियों आदि में भी इसकी विद्यमानता है। टमाटर, अमरूद, पपीता, चुकन्दर, गांठ-गोभी, हरीमिर्च, मकोय आदि के सेवन से इसकी पूर्ति सहज में ही की जा सकती है।

विटामिन 'डी'

इसे बहुत ही सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। सूर्य की किरणों में यह विटामिन प्रचुर परिमाण में समाविष्ट रहती है। यदि १०-१५ मिनट तक बैठकर धूप सेवन कर लें तो विटामिन डी की कमी स्वत: पूर्ण हो जाती है।

सूर्य किरणों में अतिरिक्त इस विटामिन को धारोष्ण दूध से भी प्राप्त कर सकते है। मक्खन में भी इसका समावेश रहता है।

परन्तु किसी भी फल तरकारी एवं अन्न आदि से इन विटामिनों को तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब कि उनका सेवन प्राकृतिक रूप में किया जाय। वर्तमान समय में कोई भी खाद्य वस्तु प्राय: उसके प्राकृतिक रूप में नहीं खायी जाती, वर उसे जला कर खाक कर दी जाती है, जिसके फल स्वरूप उसके सभी विटामिन्स जल कर खाक हो जाते अथवा भाप के साथ उड़ जाते हैं। उसके फल स्वरूप हम जो कुछ भी खाते हैं वह प्राय विटामिन प्रभृति पोषक तत्वों से रहित होता है। इस कारण नेत्रों को समुचित रूप में पोषण प्राप्त नहीं हो पाता और अनेक प्रकार के नेत्र रोगों का शिकार होना पड़ जाता है।

विटामिन्स के समुचित उपयोग की विधि

विटामिन्स का समुचित उपयोग करने की दृष्टि से शाक-सब्जी एवं फल आदि को गर्म किये बिना, कच्चे रूप में ही सेवन करना हितकर होता है। आजकल सलाद का सेवन कुछ रुचिकर होने लगा है, जो कि नेत्रों के लिए बहुत उपयोगी है।

सलाद में कच्ची सब्जी का प्राकृतिक रूप में प्रयोग होता है, इसलिए विटामिन्स एवं खनिज लवण आदि पूर्ण रूप से सुरक्षित रहते हैं। यह कई प्रकार की शाक-सब्जियों को एक साथ मिलाकर बनाये जाते हैं, इसलिए स्वादिष्ट भी होते है। हम यहाँ कुछ ऐसे मिश्रणों पर प्रकाश

डालते हैं, जिनके द्वारा रुचिकर सलाद तैयार करने में बहुत सहायता मिलती है—

(१) टमाटर १०० ग्राम, गाजर ८० ग्राम, पालक की पत्तियाँ और खजूर ४०-४० ग्राम, अदरक ३ ग्राम, कागजी नीबू १ नग और नमक आवश्यकतानुसार डाल कर सलाद बनालें।

(२) टमाटर १०० ग्राम, सेव और पके हुए केले ५०-५० ग्राम मुसम्मी १ नग, नीबू १ नग तथा नमक स्वेच्छानुसार।

(३) टमाटर १०० ग्राम, पके हुए केले और गाजर ५०-५० ग्राम, अदरक, हरा धनिया और नमक स्वेच्छानुसार।

(४) टमाटर और गाजर १००-१०० ग्राम, मूली ८० ग्राम, पालक ६० ग्राम, नीबू १ नग तथा नमक स्वेच्छानुसार।

(५) टमाटर १०० ग्राम अदरक ५० ग्राम, गुड़ २० ग्राम और नमक स्वेच्छानुसार।

(६) सन्तरा १०० ग्राम, गाजर, घीया (लौकी) और चुकन्दर २५-२५ ग्राम, किशमिश १० ग्राम और पका केला १ नग। इसमें भी आवश्यकतानुसार नमक मिला लें।

(७) अदरक और किशमिश ५०-५० ग्राम, ईख का सिरका इतना जितने में कि अदरक और किशमिश डूब जाँय तथा स्वेच्छानुसार सेंदा नमक। यदि चाहें तो कुछ टुकड़े फूल गोभी के भी डाल लें।

(८) टमाटर और बन्दगोभी १००-१०० ग्राम, गाजर ५० ग्राम, मूली २५ ग्राम और पका केला १ नग तथा नमक स्वेच्छानुसार।

(९) टमाटर, शलगम, गाजर, मूली और केला ५०-५० ग्राम, अदरक २५ ग्राम, खजूर दो नग, थोड़ा हरा धनिया और स्वेच्छानुसार नमक।

(१०) पका हुआ अमरूद, ककड़ी, खीरा और केला ५०-५० ग्राम, मूली के पत्ते और पालक के पत्ते १०-१० ग्राम तथा नमक स्वेच्छानुसार।

(११) खीरा १०० ग्राम, लौकी, पालक और मूली २५-२५ ग्राम तथा सन्तरा १ लें और नमक स्वेच्छानुसार प्रयोग करें।

(१२) अनन्नास और केला समान भाग, अदरक, हरा धनियाँ और नमक इच्छानुसार।

(१३) पपीता १०० भाग, केला और अमरूद २५-२५ भाग, कागजी नीबू और नमक आवश्यकतानुसार।

(१४) सेव, नाशपाती और अमरूद ५०-५० ग्राम, हरा धनिया २० ग्राम अदरक अथवा प्याज १०-१० ग्राम, कागजी नीबू २ तथा नमक, जीरा और काली मिर्च स्वेच्छानुसार।

(१५) शकरकन्द ५० ग्राम, मूली और गाजर २५-२५ ग्राम, नीबू १ नग और सेंधा नमक अपेक्षित मात्रा में।

(१६) गाजर और मूली ५०-५० ग्राम, पालक २५ ग्राम, अदरक १० ग्राम और नीबू १ नग तथा इच्छित नमक डालें।

(१७) गोभी (फूल) ५० ग्राम, अदरक और किशमिश २५ ग्राम, ईख का सिरका एवं नमक अपेक्षित मात्रा में।

(१८) मटर के दाने ५० ग्राम, हरे चना के दाने २५ ग्राम, मिश्री १० ग्राम, नीबू १ और नमक स्वेच्छानुसार।

(१९) मटर, मूँगफली (हरी), गाजर और मुनक्का ५०-५० ग्राम तथा नीबू १ नग और आवश्यकतानुसार नमक।

(२०) अंकुरित चना और मूँगफली हरी ४०-४० ग्राम, टमाटर, गाजर और मूली ५०-५० ग्राम, किशमिश और पालक २०-२० ग्राम तथा अदरक और नीबू आवश्यकता के अनुसार।

(२१) अंकुरित चना ५० ग्राम, टमाटर २५ ग्राम, हरी मिर्च और कागजी नीबू १-१ नग, नमक स्वेच्छानुसार।

सलाद बनाने के सामान्य नियम

इसमें जो भी शाक-सब्जी एवं फल आदि प्रयोग में लाये जाँय, उन्हें आग पर

नहीं चढ़ाना चाहिए। इनमें से जो भी वस्तु काटने योग्य हो उसे काटलें और जो वस्तु कसने लायक हो उसे कस कर महीन कर लें। पत्तियों के छोटे-छोठे टुकड़ों के रूप में कुतर कर डालना चाहिए।

सलाद बनाने में कोई भी ऋतु के अनुकूल पका हुआ मीठा फलकाम में लाया जा सकता है। सभी ऋतु फल शरीर के लिए स्वास्थ्य प्रद होते नेत्र भी शरीर का एक अङ्ग है, इसलिए शारीरिक स्वास्थ्य की वृद्धि से नेत्रों का स्वास्थ्य भी स्वतः ठीक रहता है।

ऋतु फलों के साथ हरे शाक-सब्जी आदि मिला सकते हैं। परन्तु शाक-सब्जी वही मिलानी चाहिए, जो कि कच्ची खाने में रुचिकर प्रतीत हों, जैसे कि गोभी, गाजर, मूली, पालक, भिण्डी आदि। सभी फल और शाक-सब्जी ताजा, स्वच्छ और सुरुचिपूर्ण होने चाहिए।

जो शाक-सब्जी आदि कड़ी हों, उन्हें घीयाकस के कस लें और जो कोमल हो उन्हें काट कर टुकड़े कर लें। पत्ते आदि को बहुत महीन कुतर कर डालें। नदरक, नीबू, धनियां, हरी मिर्च आदि का प्रयोग हितक और रुचि वर्द्धक रहता है।

नमक नेत्रों के लिए हानिकारक होता है, इसलिए कम से कम डालना चाहिए। अच्छा हो कि सेंधें नमक का प्रयोग किया जाय। स्वाद के लिए थोड़ा काला नमक भी डाल सकते हैं। हींग, जीरा आदि का मिश्रण भी हितकर हो सकता है।

सलाद में दही का प्रयोग भी कर सकते हैं। परन्तु दही मीठा होना चाहिए। ऋतु फल आदि का प्रयोग अपनी रुचि के अनुकूल किया जाय। सिरका आदि प्रयोग भी करते हैं।

सलाद की ताजगी एक घण्टे तक ही ठीकर रहती है। इसलिए उस का उपयोग एक घण्टे के भीतर ही कर लेना चाहिये।

जिन फलों का शाक-सब्जियों के छिलके सरलता से चबाये जा सकें,

उनके छिलकों का प्रयोग अवश्य करें। क्योंकि छिलकों में विटामिन्स आदि पोषक तत्वों की अधिकता रहती है।

अंकुरित अनाज का प्रयोग

अंकुरित अनाज का सेवन शरीर के लिए अत्यन्त हितकर होता है। चना, गेहूँ, मूँग, अरहर, उड़द, मटर आदि सभी को अंकुरित करकेनित्य प्रति खा सकते हैं। क्योंकि अनाज के अंकुरित होने पर उसमें विटा-मिन्स प्रभृति पौष्टिक तत्वों की वृद्धि हो जाती है। यदि अंकुरित अनाज का प्रातःकालीन नाश्ते में सेवन किया जा सके तो नाश्ते की ही पूर्ति नहीं होती, वरन् एक अद्‌भुत पुष्टि प्राप्त होती है।

अंकुरित अनाज का सेवन नेत्रों के के लिये बहुत हितकर रहता है। परन्तु उसे भी खूब चबा-चबा कर खाना चाहिए। क्योंकि चबाये बिना खाने से वह अन्न रस रूप नहीं हो पाता, वरन् शौच में यथावत् निकल जाता है।

अंकुरित अनाज का सेवन किसी रोग की अवस्था में नहीं करना चाहिए। तृब रोग ठीक हो जाय तभी इसका सेवन आरम्भ किया जाय। यदि प्रोटीन्स की कमी हो तो मूँग या उड़द की दाल अथवा सोयाबीन को अंकुरित करके खाने में उसकी पूर्ति हो जाती है।

अन्न को अंकुरित करने की विधि

अंकुरित करने के लिये अन्न को धोकर साफ करें और किसी पात्र में रखकर इतना पानी डालें कि अन्न उसमें डूब जाय। इसे एक दिन रात्रि इसी प्रकार रखें और जब वह फूल जाय तब किसी मोटे वस्त्र में ढीली पोटली बाँध कर रखें। इस विधि से अधिक से अधिक २४ घण्टे के समय में अंकुर फूट निकलते हैं।

इस प्रकार अनाज के अंकुरित करने में न तो किसी प्रकार की कठि-नाई ही होती है और न वह कुछ महँगा ही पड़ता है। जो लोग महँगे

पौष्टिक पदार्थ खाने में असमर्थ हो, वे इसके सेवन से लाभ उठा सकते हैं।

कुछ लोग इच्छा होते हुये भी अर्थाभाव के कारण फल आदि का सेवन नहीं कर पाते, उनके लिये भी इसका सेवन वरदान स्वरूप सिद्ध होता है। फिर भी अंकुरित अनाज के अतिरिक्त फलों का भी थोड़ा-बहुत सेवन करना अपेक्षित होता है। यदि महँगे फल न ले सकें तो सस्ते फलों से काम चला सकते हैं।

प्राकृतिक रूप से परिपक्व अन्न की उपयोगिता

इस प्रकार आग पर पकाये हुए अन्न की अपेक्षा प्राकृतिक रूप से परिपाक को प्राप्त हुये अन्न का सेवन अधिक हितकर रहता है। आग में पकने पर कोई भी अन्न अपने पोषक तत्वों को पूर्ण मात्रा में सुरक्षित नहीं रह सकता। क्योंकि अग्नि के सम्पर्क से प्रोटीन्स, विटामिन्स एवं खनिज लवण आदि नष्ट हो जाते हैं, जिसके फल स्वरूप अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जिनमें नेत्रों के विभिन्न विकार भी सम्मिलित हैं।

उसका एक कारण यह भी है कि कच्चे खाद्य पदार्थों में अधिक जीवनी शक्ति रहती है। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि कच्चे खाद्य पदार्थ अधिक दिनों तक यथावत रखे रहते हैं। जब कि आग पर पकाये जाने पर उन्हें अधिक दिनों तक नहीं रख सकते। क्योंकि पकाये हुये अन्न के बासी होने पर उसमें सड़न आरम्भ हो जाती है और फिर वह किसी काम का नहीं रहता।

यद्यपि यह मानी हुई बात है कि पकाये हुये अन्न में घृत आदि के मिश्रण से स्वाद-वृद्धि हो जाती है, तथापि वह स्वाद-वृद्धि ही रोग कारण बन जाती है। पकाया हुआ अन्न एक तो गुणहीन होता है और दूसरे अधिक खा लिया जाने के कारण पाचन यन्त्र को उसे पचाने की क्रिया में अधिक परिश्रम करना होता है। एक तथ्य यह भी है कि कच्चे खाद्य

पदार्थ की अपेक्षा, अग्नि पर पकाये गये खाद्य पदार्थ परिपाक होने में भी अधिक समय लगता है, क्योंकि वह अन्न अग्नि के संयोग से घृतादि से युक्त होकर गरिष्ठ हो जाता है।

कच्चे खाद्य पदार्थ और पोषक तत्व

कच्चे खाद्य पदार्थों के सेवन से शरीर को प्रोटीन्स की अधिक प्राप्ति होती है, जिसके फल स्वरूप अस्थियाँ सुदृढ़ हो जाती हैं। विटामिन्स और कार्बोहाइड्रेट्स आदि भी कच्चे पदार्थों के सेवन से अधिक मात्रा में प्राप्त किये जा सकते हैं।

अनेक व्यक्ति कहते हैं कि कच्चे खाद्य पदार्थ सुस्वादु नहीं होते, इस लिये उनका खाया जाना रुचिकर नहीं होता। उनमें फल अवश्य रुचिकर हो सकते हैं, परन्तु वे महँगे बहुत होते हैं। अतः सामान्य आय वाला व्यक्ति उनके सेवन में समर्थ नहीं होता।

उपर्युक्त दलील प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति भी बीड़ी, सिगरेट, पान, चाय, काफी एवं टोस्ट आदि पर काफी धन व्यय करते रहते हैं। परतु यदि वे उन वस्तुओं के अवगुणों पर ध्यान दें तो सहज ही समझ सकते हैं कि उनके सेवन से स्वास्थ्य को कितनी क्षति पहुंचती है।

बीड़ी, सिगरेट, शराब, चाय, काफी कादि में से कोई की वस्तु शारीरिक स्वास्थ्य के लिये अनुकूल नहीं। पाश्चात विशेषज्ञ भी उन्हें विषाक्त मानते हुए स्वास्थ्य और चौपट करने वाली मानते हैं। यह सभी वस्तुयें शारीरिक अवयवों को निकम्मा और शक्तिहीन बनाने लगती हैं। इनके प्रतिकूल प्रभाव से न जाने कितने मनुष्य कैंसर आदि रोगों के शिकार हो जाते हैं।

बीड़ी-सिगरेट से भी अधिक प्रचलन चाय का है। अनेकानेक छोटे-बड़े परिवारों में चाय का व्यवहार दैनिक पेय के रूप में होता है। बहुत से मनुष्य तो कई-कई बार चाय पीने के आदी हो चुके हैं। परन्तु वे यह नहीं जानते कि चाय कोई अच्छी वस्तु नहीं है। उसका पाचन यन्त्र पर

तो बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जो लोग चाय पीने के आदी हैं, वे सदा कब्ज के शिकार बने रहते हैं।

बैड टी एक बुरी आदत

अनेक व्यक्तियों को बैड टी (प्रातःकाल जागते ही चाय लेने) की आदत पड़ गई है। वे जब तक चाय नहीं पीते, तब तक उन्हें दस्त नहीं उतरना। परन्तु यह आदत वास्तव में उनके पाचन यन्त्र को बिगाड़ने में सहायक होती है, जो अनेक प्रकार के उदर रोगी में कारण है। अनेकों विशेषज्ञ यह स्वीकार करते हैं कि चाय के सेवन से जो रोग उत्पन्न होते हैं, उन्हें नेत्र रोग भी सम्मिलित हैं।

और काफी तो उसे भी अधिक हानिकारक है। उसकी आदत पाचन यन्त्र को अधिक शिथिल बना देती है। उसके फल स्वरूप खाया पिया अन्न हजम नहीं होता। यही कारण है कि ऐसे व्यक्ति अनेक रोगों के शिकार बने रहते हैं और उनकी दृष्टि भी कमजोर हो जाती है।

नशीले पदार्थों का बुरा प्रभाव

इसी प्रकार शराब का प्रभाव भी कम नहीं पड़ता। जो लोग शराब चरस, गाँजा आदि के शौकीन अथवा आदी हैं, वे किसी न किसी विकार से अवश्य ही ग्रस्त रहते हैं। ऐसे किसी भी मनुष्य को देखें तो वह दृष्टि-मांद्य, मोतियाबिन्दु, केश-कण्डुलम आदि से किसी भी रोग से पीड़ित मिल सकता है।

कोई भी मादक द्रव्य शरीर के लिये अनुकूल नहीं होता। चाहे उसके प्रभाव की जानकारी उस समय न हो सके। धीरे-धीरे उसके और अनेक प्रकार के तनाव उत्पन्न हो जाते हैं।

इसी प्रकार अधिक मिर्च मसाले के पदार्थ भी बहुत हानिकारक होते हैं। उनका प्रभाव स्वाकविक यन्त्र पर भी प्रतिकूल पड़ने के कारण नेत्रों में विकार उत्पन्न हो सकता है।

बासी एवं सड़े-बुसे अन्न का प्रयोग भी स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल

सिद्ध होता है। आग पर पका हुआ अन्न तो सदैव ताजा ही काम में लाना चाहिये ।

यह तो रही कच्चे अन्न की वात, अव आग पर पकाये गये अन्न के विषय में भी कुछ कह देना आवश्यक प्रतीत होता है। क्योंकि वर्तमान समय में उसके विना भी काम नहीं चल सकता।

पका हुआ भोजन और उसका उपयोग

पके हुए भोजन के प्रयोग में यह ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि गरिष्ठ खाद्य पदार्थों का का सेवन जहां तक सम्भव हो, न किया जाय। अनेक परिवारों में सायंकाल की व्यालू में पूड़ी, परावठे आदि का प्रयोग किया जाना है। परन्तु पूड़ी, पराँमठे आदि का भोजन बहुत हानिकारक होता है।

दुपहर और रात्रि के भोजन में गेहूँ की रोटी (चपाती) का प्रमुख रूप से ग्रहण किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त दाल, दलिया, खिचड़ी आदि भी ले सकते हैं। एक-दो रोटी चने के आटे की ली जाय तो भी अनुकूल रहती है, क्योंकि चने में कब्ज नाशक गुण है। परन्तु, अकेले चने के स्थान पर चना, गेहूँ और जौ को समान भाग मिला कर पिसवा लेना अधिक हितकर है। चपाती वनाने के लिए अन्न को जल के साथ गूंद कर लहस उत्पन्न करलें और गर्म तवे पर डाल कर दोनों ओर से सेकें।

आहार लेते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जो कुछ भी लिया जाय, वह सुपच हो और साथ ही शरीर को शक्ति प्रदान करे। जो लोग रोटी खाना पसन्द नहीं करते, वे गेहूँ का दलिया सेवन कर सकते हैं, क्योंकि दलिया सुपाच्य भी होता है और पौष्टिक भी।

दलिया में जो प्रोटीन्स, कार्वोज और लवण आदि तत्व पाये जाते हैं, वे सब शरीर के लिए बहुत लाभदायक होते हैं। इसका वनाना भी बहुत सरल है। यह मीठा अथवा नमकीन दोनों प्रकार का वनाया जा सकता है।

दलिया बनाने की विधि

गेहूं को भून कर दलिया बनाना अधिक उपयुक्त रहता है । अथवा गेहूं को दल कर दलिया बनालें और उसे कढ़ाई में डाल कर थोड़े घृत के साथ भून लें । इस प्रकार बनाया हुआ दलिया दो बड़े चम्मच प्रमाण में लें और ४ प्याले पानी में डाल डाल कर अग्नि पर उबालें उसके बाद उसमें दलिया डाल दें तथा अपेक्षित मात्रा में चीनी डाल कर घुल जाने तल उबालें और दूध के साथ सेवन करें ।

यदि दलिया में चीनी न डालनी हो, उसे नमकीन बनाना चाहें तो चीनी के स्थान पर आवश्यकतानुसार नमक, काली मिर्च और जीरा डाले दें । किन्तु ध्यान रहे कि नमकीन दलिया में दूध नहीं जाला जाता ।

कुछ लोग रोटी अथवा दलिया को उतना पसन्द नहीं करते, जितना कि दाल-चावल से निर्मित खिचड़ी को । यह हल्का और सुपाच्य आहार है, जो कि सूखे और पलले रूप में बनाया जा सकता है । परन्तु सूखी खिचड़ी कब्ज करती है, जब कि पतली खिचड़ी बद्धक होते हुये भी कब्ज नहीं करती ।

खिचड़ी बनाने की विधि

खिचड़ी बनाने के लिये २ चम्मच चावल और ४ चम्मच मूंग का दाल लें । इन्हें पृथक पृथक बीन साफ कर मिलाने के पश्चात् पानी से ठीक प्रकार से घोलें । फिर एक भगौने में पानी डाल कर उबालें तथा चावल और दाल के इस मिश्रण को डाल कर उसमें आवश्यकता के अनुसार नमक कालीमिर्च, जीरा और हल्दी मिला दें । परन्तु नमक आदि को तभी डालें जब कि चावल और दाल गूलने लगें । जब खिचड़ी पक जाय, तब उसे उतार कर सेवन करें । यदि चाहें तो इसमें घी भी मिला सकते हैं । कुछ लोग खिचड़ी में दही मिलाकर खाना

अधिक पसन्द करते हैं। परन्तु इसके लिए जो दही लिया जाय वह खट्टा नहीं होना चाहिए।

साबूदाने की खीर

यह भी हल्का और सुपाच्य आहार है। इसे ज्वरादि रोगों में पथ्य के रूप में भी सेवन किया जाता है। इसका बनाया जाना भी बहुत सरल है। सामान में साबूदाना, चीनी और दूध की आवश्यकता होती है।

एक बड़ा चम्मच साबूदाना पाव भर दूध में लें। पानी और दूध को एक पात्र में डाल कर उबलने दें तथा जब वह उबल जाय तब साबूदाने को साफ करके उसमें डाल दें। तत्पश्चात् आवश्यक मात्रा में चीनी डाल दें

कुछ लोग इसे इस प्रकार भी बनाते हैं कि साबूदाने को पानी में भिगोकर साफ कर लेते हैं और दूध को आग पर उबाल कर उसमें साबूदाना और चीनी डाल देते हैं तथा जब पक जाता है। तब उतार कर काम में लाते हैं। इस प्रकार दोनों में से कोई सी भी विधि काम में लाई जा सकती है।

परन्तु, पेचिश हो तो साबूदाने की चीनी मिश्रित खीर के स्थान पर उसे नमकीन रूप में ही सेवन करना चाहिए। उसके लिये पानी उबाल कर उसमें साबूदाना, नमक, कालीमिर्च और जीरा मिलावें तथा ठीक प्रकार से पक जाने पर सेवन करें।

शाक-सब्जियों का परिपाक

यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि शाक-सब्जियों को पका कर ही खाया जाय। रोटी आदि के साथ उनका प्रयोग सलाद के रूप में भी कर सकते हैं। फिर भी लोगों को पके हुए शाक आदि खाने की आदत पड़ गई है। परन्तु इनके विषय में यह ध्यान रखा जाय कि कोई शाक-सब्जी बहुत अधिक समय तक न पकायी जाय।

लौकी, तुरई, टमाटर, गाजर, मूली, भिण्डी, पालक आदि की उबली हुई सब्जियों का प्रयोग करना चाहिए। अथवा इन्हें भाप से पकाया जाना चाहिये। प्रेशर कुकर द्वारा पकायी हुयी शाक-सब्जी अधिक हितकर हो सकती है। क्योंकि उसमें पकायी जाने पर उसके पोषक तत्व अधिक मात्रा में नष्ट नहीं होते।

शाक-सब्जियों में आवश्यकतानुसार नमक, कालीमिर्च, हींग, जीरा, हल्दी आदि डालना उचित है। यह सभी द्रव्य स्वाद और स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रतिकूल नहीं होते। परन्तु गर्म मसाले और मिर्च आदि तीक्ष्ण द्रव्यों को इनमें नहीं डालना चाहिए।

किसी भी सब्जी को घी के साथ छौंक देकर भी पकाया जा सकता है। सब्जियां सूखी और रसेदार दोनों प्रकार की बनती हैं। परन्तु रसेदार सब्जी अधिक उपयुक्त रहती है। यदि उसमें नीबू निचोड़ दिया जाय तो वह अधिक पाचक और स्वादिष्ट वन जाती है।

शाक-सब्जियों का सूप

अनेक शाक-सब्जियों का सूप वनाया जा सकता है। सूप स्वादिष्ट, पौष्टिक और पाचक भी होता है। टमाटर, अदरक, गाजर, तोरई, लौकी बथुआ, पालक आदि में से किसी का भी सूप वना सकते हैं। यदि चाहें तो कई सब्जियों को मिला कर उनका भी सूप वनाया जा सकता है। आमिष भोजियों में मांस का सूप भी प्रयोग में लाया जाता है।

सूप बनाने की विधि यह है कि टमाटर प्रभृति किसी भी सब्जी को साफ करके एक पतीली में थोड़े पानी के साथ रख कर अग्नि पर चढ़ादें और जब वे गल जांय तब कुचल कर उतार लें और किसी अन्य बर्तन में छान लें। अब उसमें घृत और जीरे का छौंक लगा कर नमक, काली मिर्च डाल दें और ठण्डा होने पर सेवन करें।

यदि घृत का परहेज हो तो बिना छौंक लगाये ही नमक, कालीमिर्च

और जीरा मिला कर सेवन कर सकते हैं। इसी प्रकार से अन्यान्य शाक सब्जियों का सूप बनाया जा सकता है।

फलों के रस

फलों के रस का सेवन करना अत्यन्त लाभदायक है। यह पौष्टिक, शक्तिवर्द्धक और सुपाच्य होते हैं। सन्तरा, मुसम्मी, सेव, अंगूर, अनन्नास प्रभृति अनेक प्रकार के फल इस कार्य में लिये जाते हैं। जो लोग अर्था-भाव से महँगे फलों का उपयोग न कर सकें, वे अमरूद, टमाटर प्रभृत्ति फलों के रस का सेवन करें तो बहुत लाभ उठा सकते हैं। गाजर बहुत सस्ती वस्तु है। उसका रस भी स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त लाभकारी है। विशेष का नेत्र रोगों में गाजर या गाजर के रस का सेवन बहुत हित-कर रहता है।

किसी भी फल के रस में नमक, कालीमिर्च और जीरा मिला लें तो वह अधिक स्वादिष्ट बन जाता है। नीबू का रस भी निचोड़ लिया जाय तो स्वाद-वृद्धि के साथ-साथ सुपाच्यता भी अधिक बढ़ जाती है।

अण्डे का फ्लैप

आमिष भोजियों के लिये इसका सेवन भी उपयुक्त समझा जा सकता है। इसे बनाने के लिये पहिले एक अण्डे को तोड़ कर प्याले में डालें और चम्मच से ठीक प्रकार फेंटें। तत्पश्चात् पाव भर दूध गर्म करके उसमें आवश्यकतानुसार चीनी डालें और उक्त फेंटा हुआ अण्डा मिला कर गर्म-गर्म पी जांय। यह नेत्रों के लिए भी हितकर है।

अन्डे का कस्टर्ड

आमिष भोजियों के लिए यह भी उपयुक्त आहार है। एक ताजा अण्डा लेकर उसे ठीक प्रकार फेंटें और उसमें चौथाई लीटर दूध तथा आवश्यकतानुसार चीनी डाल कर एक छोटे बर्तन में रखें। अब इस बर्तन को उबलते हुए पानी के बड़े बर्तन में रख दें तथा छोटे बर्तन के

घोल को चम्मच से चलाते जांय। इस क्रिया द्वारा घोल गाढ़ा हो जाय तब सेवन करें। इसका प्रयोग नाश्ते में अथवा अन्य समय कर सकते हैं।

अरारोट का आहार

निरामिष भोजी हों या आभिष भोजी, सभी के लिये यह आहार अत्यन्त हल्का, सुपाच्य और पौष्टिक रहता है। इसे बनाने के लिये चाय के दो चम्मच भर अरारोट का पाउडर लेकर उसे ५० मिली लिटर पानी में घोलें और पांव भर उबलते हुए दूध में थोड़ा-थोड़ा डाल-डाल कर चलाते रहें, जिससे कि उसमें गाँठें न पड़ने पावें। इस प्रकार चलाते चलाते जब वह गाढ़ा होने लगे तब उतार कर चीनी मिलावें और सुहाता-सुहाता गर्म सेवन करें।

परन्तु, यदि पेचिश हो रही हो तो ध्यान रखें कि चीनी का सेवन अहितकर रहता है। उस स्थिति में दूध के स्थान पर जल और चीनी के स्थान पर नमक डाल कर प्रयोग में लाना चाहिये।

आहार सम्बन्धी अन्यान्य तथ्य

नेत्र रोगों से बचने अथवा उनसे छुटकारा पाने के लिये यह आवश्यक है कि सन्तुलित, सुपाच्य किन्तु पौष्टिक आहार लिया जाय। उसमें गरिष्ठ, बासी, प्रकृति के प्रतिकूल, कब्जकारक या अन्य किसी प्रकार से भी हानिकारक द्रव्य का समावेश न हो। बासी अन्न तले हुए पदार्थ, अधिक मिर्च मसाले मिश्रित तीक्ष्ण पदार्थों का प्रयोग भी अहितकर होता है।

भोजन उतना ही करें, जितनी कि भूख हो। वरन् भूख से भी कम खाना अधिक लाभ कर है। आचार्यों और विशेषज्ञों के अनुसार आधा पेट अन्न और चौथाई पेट जल से भरना चाहिये। शेष चौथाई पेट खाली रहे, यही सन्तुलित आहार है।

भूख न हो तो भोजन न करें। उस स्थिति में स्वल्प आहार भी

वर्जित है । भोजन करने के पश्चात् पुनः कुछ भी नहीं खाना चाहिए । यहाँ तक कि प्रत्येक बार के आहार में प्रायः ५-६ घन्टे का अन्दर रहना चाहिये । अधिक नहीं, तो चार घन्टे का अन्तर तो अवश्य ही रखा जाय ।

प्रातःकाल उठते ही चाय (बैड टी) कदापि न लें, वरन् ताजा पानी पीकर शौच के लिये जांय । फिर दांतुन, कुल्ले, स्नान आदि से निवृत्त होकर कुछ नाश्ता कर सकते हैं । नाश्ते में फल, दूध या अंकुरित अनाज लेना चाहिये । अथवा एक गिलास पानी में चार चम्मच शहद और एक कागजी नीबू का रस डाल कर पानी भी नाश्ते की पूर्ति कर देता है । इससे नेत्र के अनेक विकार दूर होने में भी सहायता मिलती है ।

इस प्रकार नाश्ते का यह कार्य ६-७ बजे पूर्ण कर लिया जाय तो दुपहर का भोजन लगभग ११ बजे किया जाना उचित है । उसके पश्चात् प्रायः ३ बजे तीसरे प्रहर का नाश्ता किया जा सकता है और रात्रि का भोजन लगभग ७ बजे । शयन से पूर्व मिश्री अथवा चीनी युक्त गर्म दूध पी लेना भी लाभदायक है ।

मध्यान्ह और रात्रि काल के भोजन में रोटी, दलिया, शाक-सब्जी, दाल आदि हल्के पदार्थ लिये जाँय । यदि चाहें तो फलों का सेवन भी कर सकते हैं । तीसरे प्रहर के नाश्ते में फलों का रस ले सकें तो अत्युत्तम । यदि न ले सकें तो अंकुरित अनाज या दूध का सेवन करना चाहिये ।

इस प्रकार आहार का क्रम इस ढङ्ग से बनाया जाय कि उचित मात्रा में सभी पोषक तत्वों से युक्त आहार शरीर को प्राप्त हो सके । आहार पर आहार कभी न करें । बहुत बार किसी विवाह आदि में सम्मिलित होने पर कुछ रिश्तेदार या इष्ट मित्र अधिक भोजन का आग्रह करते हैं । उस स्थिति में भी विनम्रता पूर्वक अस्वीकार करना ही स्वास्थ्य रक्षा के लिये आवश्यक होता है ।

आहार सम्बन्धी मूल मन्त्र

आहार सम्बन्धी मूल मन्त्र यह है कि चटोरेपन के कारण उत्पन्न हुई जिह्वा के स्वाद की लिप्सा का त्याग करना बहुत आवश्यक है। खाने पीने के विषय में जो लोग संयम बर्तते हैं, वे सदा स्वस्थ रहते हैं। इसके विपरीत, असंयम वाले मनुष्य अनेक रोगों में फँसे रहकर दु:ख उठाते हैं।

अप्राकृतिक रूप से सेवन किया जाने वाला अन्न नेत्रों पर बहुत बुरा प्रभाव डालता है। विशेष कर पूड़ी, पकवान, मिठाई आदि का सेवन जायकेदार होने पर भी विष के समान हानिकारक सिद्ध होता है। इसलिये उसका सर्वथा त्याग ही बुद्धिमानी है।

बासी अन्न दूषित हो जाता है। उसका सेवन करने से शरीर का समस्त शिराजाल गड़बड़ा जाता है। उसकी क्रिया में जो व्यवधान पड़ता है, वह अनेक रोगों को उत्पन्न कर देता है। दूषित अन्न से रक्त में गाढ़ापन आ जाता है, इस कारण उसकी गति नियमित नहीं रह पाती। इसके फलस्वरूप नसों में तनाव उत्पन्न हो जाता है। उनका लचीलापन बाधित होने के कारण नेत्रों को पोषण मिलना रुक जाने से रोग की उत्पत्ति हो जाती है।

नेत्रों का दुखना, उनमें दर्द, खड़का, दृष्टिमांद्य आदि सभी विकृतियों में दूषित अन्न ही प्रमुख कारण है। यदि इस विषय में सतर्क रहा जा सके तो कोई कारण नहीं कि किसी भी नेत्र रोग की उत्पत्ति हो जाय। क्योंकि अन्न का सम्बन्ध उदर से बहुत कुछ है और उदर में कोई विकार उत्पन्न होते ही उसका प्रभाव समूचे शरीर पर प्रतिकूल रूप से पड़ता है। दूषित भोजन पाचन यन्त्र को बिगाड़ कर कब्ज उत्पन्न कर देता है। उस स्थिति में आंतों की क्रियाशीलता बहुत कम हो जाती है।

आंतों की निष्क्रियता अथवा अक्षमता नेत्रों को भी प्रभावित किये

बिना नहीं रहती। इस प्रकार भोजन की गड़बड़ी समूचे शरीर-यन्त्र को बिगाड़ देती है। इसलिये प्रतिकूल आहार से सदा बचते रहना चाहिए।

नेत्र और शारीरिक व्यायाम

नेत्र का शरीर यन्त्र से सम्बन्ध

नेत्रों का सम्बन्ध शरीर के अन्य अवयवों से भी अभिन्न रूप से है। क्योंकि शरीरस्थ नस-नाड़ियों का जाल जैसे अन्यान्य अङ्गों में बिछा रह कर समूचे शरीर को रस-रक्तादि पहुंचाने में तत्पर रहता है, वैसे ही नेत्रों में भी उसकी उसी प्रकार विद्यमानता है और रस रक्त आदि की पूर्ति नेत्रों को भी उसी जाल के द्वारा विधिवत रूप से होती रहती है।

आप अनुभव करते होंगे कि शरीर के एक अङ्ग के थक जाने पर सभी अङ्ग उससे प्रभावित होते हैं। हाथ-पांवों की थकान का प्रभाव नेत्रों पर भी उसी के अनुसार पड़ता है। इसी प्रकार शरीर पुष्ट होता है तो नेत्र भी पुष्ट हुए बिना नहीं रहते। यहीं कारण है कि शरीर के विकार ग्रस्त होने से नेत्र भी विकार-ग्रस्त हो जाते हैं और शरीर के स्वस्थ रहने पर भी दोष रहित बने रहते हैं।

शरीर में विकार उत्पन्न करने में कब्ज (मलावरोध) एक प्रमुख कारण है। उसका प्रभाव आंखों पर भी बहुत प्रतिकूल पड़ता है। यदि कब्ज न होने दिया जाय तो नेत्र-दोष से भी बहुत कुछ बचा जा सकता है, जो कि कुछ अधिक कठिन कार्य नहीं है। केवल आहार-विहार के संयमित रखने से कब्ज की उत्पत्ति से बचा सकता है।

व्यायाम की उपयोगिता

कब्ज से बचने के लिए व्यायाम बहुत आवश्यक कर्म है। ऐसे अनेकों व्यायाम प्रचिलित हैं जो कोष्ठबद्धता उत्पन्न नहीं होने देते। प्रातःकाल भ्रमण, दौड़, खेल कूद (फुटबॉल आदि), कुश्ती, मुद्गर या तलवार फिराना, लाठी चलाना, दण्ड-कसरत करना अथवा योगासनों का अभ्यास करना आदि सब ऐसे ही व्यायाम हैं, जिनके द्वारा शरीरस्थ मल का अपेक्षित रूप में निस्सरण होता रहता है, इस कारण मलावरोध नहीं हो पाता।

उन व्यायामों पर इस पुस्तक में ही यथा स्थान प्रकाश डाला गया है। इनके करने से पाचन शक्ति ठीक होकर रक्त-संचार में वृद्धि हो जाती है। उस वृद्धि के फल स्वरूप अन्य अवयवों के समान नेत्रों को भी अपेक्षित मात्रा में रक्त पहुँचने लगता है। इस कारण नेत्रों में उत्पन्न हुए दोषों का निवारण हो जाता है। व्यायाम की विभिन्न क्रियाओं के द्वारा शरीरस्थ विजातीय एवं दूशित मल शीघ्र ही बाहर निकल जाता है। उन व्यायामों के साथ यदि नेत्र गोलक के अथवा नेत्र के समीपस्थ अवयवों के विभिन्न व्यायाम भी कर लिए जाँय तो शारीरिक स्वास्थ के साथ नेत्रों को भी स्वस्थ रखने में पूर्ण सहायता मिल जाती है।

नेत्रों के लिए उपयोगी शारीरिक व्यायाम

निम्न प्रकार के शारीरिक व्यायामों के द्वारा नेत्र दोषों को दूर करने में बड़ी सहायता मिलती है।

(१) सीधे खड़े हों जांय, मुख पूर्व की ओर रहे। हाथों को नीचे की ओर तनी हुई स्थिति में रहने दें। सामने की ओर देखें और चित्त को विचार रहित एवं शान्त रखें। यह क्रिया एक मिनट करें तथा दस सैकिन्ड तक अकड़न-रहित विश्राम के साथ १० बार तक पुन दुहरावें। नेत्रों के लिए बहुत हितकर है।

(२) पूर्वाभिमुख से सीधे खड़े हों और हाथों को नीचे की ओर तनो

हुई स्थिति में रखें । इसके बाद शरीर का भार पाँवों की अँगुलियों पर डालते हुए एड़ियों को उचका लें । इस समय मन को शान्त रख कर १० सैकिन्ड तक इस स्थिति में रहें और फिर ५ सैकिन्ड के लिए एड़ियों को धरती पर टिका कर पुन: १० सैकिन्ड के लिए उचकालें । इस क्रिया को ८-१० बार दुहराने से नेत्रों को बड़ा लाभ पहुंचता है ।

(३) सीधे खड़े होकर दोनों हाथों को ऊपर आकाश की ओर तान लें । इस स्थिति में आधे मिनट तक रह कर पूर्व स्थिति में आ जांय इस क्रिया को भी ८-१० बार दुहरावें ।

(४) सीधे खड़े हों, दांये हाथ को पीछे की ओर से घुमा कर शिर के ऊपर ले जाँय और बाँये हाथ को आगे की ओर से घुमा कर । इस प्रकार दोनों हाथों के मणिबन्ध शिर पर पहुंच कर परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श करते रहेंगे । इस क्रिया को भी ८-१० बार दुहराना चाहिए ।

(५) सीधे खड़े होकर शरीर को अधिक से अधिक तानें । हाथों को भी ऊपर की ओर तानते हुए पीठ की ओर झुकते-से रखें । यह क्रिया आधे मिनट तक करें और ५ बार दुहरावें ।

(६) नम्बर ५ की स्थिति में अधिक से अधिक पीछे की ओर झुकें । परन्तु इतने ही झुकें, जितने से कि शरीर सधा रह सके । जितनी देर इस स्थिति में रह सकें रहे और फिर पूर्व स्थिति में आ जांय । यह क्रिया भी ५ बार दुहराई जानी पर्याप्त है ।

(७) सीधे खड़े होकर शिर को आगे की ओर झुकावें यहां तक कि दोनों हाथ पाँवों के अँगूठों से जा लगें । आधी मिनट तक इस स्थिति में रहकर पूर्व स्थिति में आ जाय । इसे भी ५ बार दुहरावें ।

(८) घुटनों के बल खड़े हों, जिससे कि पांव घुटनों से मुड़ कर पीछे की ओर रहें और शेष शरीर खड़ी हुई स्थिति में सीधा तना रहे । अब दोनों हाथों को दांये-बांये सीधे फैला कर तान लें और जितनी देर इस स्थिति में रह सकें रहें । इस क्रिया को भी ५ बार दुहरावे.

और फिर शान्ति से बैठ कर विश्राम करें। यह सभी क्रियाएं नेत्र-दोषों को दूर करने में उपयोगी हैं।

नेत्रों को स्वस्थ, सुन्दर बनाने वाले श्रेष्ठ व्यायाम

नेत्र मानव जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण थाती है। नेत्र न हों तो संसार ही व्यर्थ होता है। यदि नेत्र हों भी और वे स्वस्थ न हो, उनसे कम दिखाई दे अथवा कोई अन्य विकार हो तो वह भी दुःखदायी स्थिति है। क्योंकि कोई भी रोग, कोई भी विकार मनुष्य के लिए सुखी नहीं रहने देता।

इसी प्रकार नेत्रों का समान न होना, एक नेत्र छोटा, दूसरा बड़ा होना, अथवा चुन्देपन के कारण देखते समय नेत्र की आकृति में किसी प्रकार की असुन्दरता प्रतीत होना या किसी ऐसी अन्य विकृति का होना जिसके कारण नेत्र भौंडे प्रतीत होने लगें, तो वह भी कभी-कभी हेय-भावना में कारण बन जाते हैं।

नेत्रों का आकार शरीर के अनुपात में कम या अधिक है तो भी ऐसा मनुष्य समाज में आदर प्राप्त करने से वंचित रह जाता है। ऐसी स्थिति में भी यह इच्छा होती है कि उनका कोई उपाय हो सके।

और यह बात नहीं कि कि उसका कुछ उपाय न हो, उपाय सब का है। प्रथम तो उसे जानने की आवश्यकता है, क्योंकि जब तक किसी उपाय को जानते ही नहीं, तब तक उसे करेंगे किस प्रकार? दूसरे उपाय को जान भी लें तो उसे धैर्य पूर्वक क्रियान्वित करना अपेक्षित है। अनेक व्यक्ति किसी कर्म को आरम्भ करके हथेली पर सरसों जमने जैसी बात सोचते हैं, जो कि सर्वथा असम्भव है।

वैज्ञानिकों ने उसके लिए अनेकों व्यायाम क्रियाओं का परीक्षण किया। वे क्रियाएं केवल नेत्र-सौन्दर्य की ही वृद्धि नहीं करतीं, वरन् अनेक प्रकार के नेत्र रोगों को भी दूर कर देती हैं। नेत्रों से पानी निकलना, उनका लाल हो जाना, जाला, धुन्ध, मोतियाबिन्दु तथा रोहे प्रभृति

विकारों में भी इनसे लाभ उठा सकते हैं। यह रोग औषधोपचारों से भी वड़ी कठिनता से ठीक हो पाते हैं, जब कि इन व्यायाम क्रियाओं को यदि धैर्य पूर्वक करें तो लाभ होना वहुत कुछ सम्भव होता है।

प्रायः देखा जाता है अनेकों सामान्य रोग औषधोपचार के बिना, कुछ सामान्य-सी प्रक्रियाओं से ही दूर हो जाते हैं । जैसे कि गुहेरी (स्टायी) और उसके दर्द में केवल हाथों की रगड़ अथवा पामिंग से ही लाभ होने लगता है। यह क्रिया दोनों हातों को परस्पर रगड़ कर स्पर्श करने से सम्पन्न हो जाती जाती है। इसका कारण शरीरस्थ वह प्राणिज विद्युत है, जो कि हाथों की रगड़ से उत्पन्न होकर अपने प्रवाह (करेंट) का आरम्भ कर देती है।

व्यायाम की अनेकानेक क्रियायें प्राचीन काल से प्रचलित हैं। वे शरीर के अन्यान्य अङ्गों के लिए जितनी लाभदायक होती हैं, उतनी ही नेत्रों के लिये भी हो सकती हैं। उनकी परिष्कृत विधि का प्रयोग दृष्टिमांद्य आदि सभी विकारों पर किया जा सकता है। कुछ लोगों की मान्यता है कि उनके अभ्यास से चश्मा लगाने की भी आवश्यकता नहीं रहती।

यहां कुछ ऐसे व्यायामों का उल्लेख किया जाता है। जिनके द्वारा नेत्र रोगों का निवारण सहज होता है तथा उनके आकारादि की विकृतियां भी दूर हो जाती हैं।

नेत्रों की निकट दृष्टि तीव्र करने वाला व्यायाम

पद्मासन या किसी भी सरल आसन से पूर्व की ओर मुख करके बठिये। तत्पश्चात् पुतलियों को नीचे की ओर दृष्टि करके बाँये से दाँये और दाँये से बाँये चलाइये। इस प्रकार इस क्रिया को बारह बार कीजिये। इससे नेत्रों के अनेक विकार दूर हो जाते हैं। विशेष कर नेत्रों की निकट दृष्टि को तीव्र करने में यह अधिक उपयोगी है।

नेत्रों की दूर दृष्टि तीव्र करने वाला व्यायाम

किसी भी सहज आसन से पूर्वाभिमुख होकर बैठें और सामने की ओर देखते हुए पलकों को बार-बार खोलें और बन्द करें। इस क्रिया को आसानी से जितनी बार कर सकें, उतनी बार करनी चाहिये। इस क्रिया से पलकों में जमा हुआ कीचड़, पीव आदि सब साफ हो जाता है। विशेष कर यह व्यायाम नेत्रों की दूर दृष्टि तीव्र करने में अधिक सहायक सिद्ध होता है।

दृष्टिमांद्य में उपयोगी श्रेष्ठ व्यायाम

किसी भी सहज स्थिति में पूर्व की ओर मुख करके बैठ जांय और सामने की ओर सीधा देखें। फिर शीघ्रता से बारह बार बांये कोने में देखें और तदुपरान्त उतनी ही बार दांये कोने में देखें। इस व्यायाम के अभ्यास से आँखों में संचित मैल मक्कड़ दूर हो जाता है। विशेष कर नेत्रों की दृष्टि तीव्र होने में यह बहुत उपयोगी है।

अश्रुपातादि में उपयोगी सरल व्यायाम

पद्मासन लगाकर बैठें और सामने की ओर सीधे देखें तदुपरान्त आंखों की पुतलियों (Pupils) को जल्दी-जल्दी गोलाई में बारह बार घुमावें। यह व्यायाम नेत्रों से पानी जाने, दुखने, खड़का होने अथवा लाली आदि को दूर करने में बहुत उपयोगी है।

रोहों को दूर करने वाला श्रेष्ठ व्यायाम

किसी सहज स्थिति में पूर्व की ओर मुख करके बैठें और पहिले सीमने सीधे देखिये और फिर ऊपर की ओर जल्दी-जल्दी बारह बार देखिये, उसके बाद उतनी ही बार नीचे की ओर देखिये। इस व्यायाम से रोहे शीघ्र दूर हो सकते हैं।

यदि किसी पलक में गुहेरी हो तो उक्त प्र।ार से देखने के पश्चात्

हाथों को परस्पर रगड़ कर उनसे गुहेरी को स्पर्श कीजिये तो उसके दर्द एवं गुहेरी में भी शीघ्र लाभ होता है।

श्वास क्रिया युक्त सरल व्यायाम

पूर्व की ओर मुख करके पद्मासन से सीधे बैठें और सामने की ओर देखें। इसके बाद श्वास खींचते हुए शिर को आगे की ओर इतना झुकावें कि ठोड़ी कण्ठकूप का स्पर्श करने लगे। उस समय नेत्रों की दृष्टि उदर पर रहेगी इस स्थिति में १५-२० सेकिण्ड तक श्वास को रोके रह कर शिर को सीधा उठाते हुए श्वास को धीरे-धीरे निकाल दें। यह क्रिया बारह बार करनी चाहिए।

तत्पश्चात् श्वास खींचते हुए शिर को पीछे की ओर झुकावें और दृष्टि को ऊपर आकाश की ओर रखें। इस प्रकार १५-२० सैकिन्ड तक श्वास रोके रहें फिर श्वास छोड़ते हुए समान सीधी स्थिति में आ जांय। यह क्रिया भी बारह बार दुहरानी चाहिए।

यह व्यायाम सभी प्रकार के नेत्र रोगों को दूर करने में बहुत उपयोगी है। नेत्रों में खड़का, लाली, अश्रुपात आदि में तो इससे शीघ्र ही लाभ होता है। दृष्टि की मन्दता, धुन्ध, जाला, फुली, मोतियाबिन्दु तथा रोहे आदि में दीर्घकाल तक अभ्यास करने से लाभ करता है।

उक्त सभी प्रकार के व्यायामों से नेत्रों में कुछ थकान भी आ जाती है। उसे दूर करने के लिये व्यायाम के तुरन्त बाद नेत्रों को आराम दिया जाना चाहिए। इसके लिये अन्धकार दर्शन अथवा पामिंग की क्रिया बहुत उपयोगी रहती है। सामान्यतः नेत्रों को बन्द करके उन पर हथेलियों को इस प्रकार से आवरित करें कि उनका मध्य भाग गढ़े के रूप में होकर बीच में उठे हुये भाग को ढक ले। इस प्रकार हथेली से ढके जाने पर घोर अन्धकार का अनुभव होता है, जो कि नेत्र-पेशियों के लिये अत्यन्त आरामदायक है। अन्धकार दर्शन की यह क्रिया ४-५ मिनट तक करनी पर्याप्त है।

ध्यान में निमग्नता और व्यायाम क्रिया

ध्यान यद्यपि योग का एक प्रमुख अङ्ग है, क्योंकि ध्यान के बिना ध्येय की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि ध्यान में दृढ़ता आती है, तभी समाधि की सिद्धि होती है और समाधि की सिद्धि ही योग का अन्तिम लक्ष्य है। इसलिए ध्यान का अत्यधिक महत्व स्वीकार किया गया है।

ध्यान के लिए किसी बहुत सरल आसन से बैठना होता है। इतने सरल आसन से कि देर तक बैठे रहने में किसी प्रकार की ऊब अथवा किसी प्रकार का कष्ट अनुभव में न आवे। प्रथम तो उस आसन को लगा कर बैठे रहना ही एक प्रकार का व्यायाम है, उस पर भी चित्त को एकाग्र करके ध्यान तल्लीन कर लेना भी कठिन से कठिन व्यायाम की पूर्ति स्वतः कर देता है।

इस प्रकार अनेकों अनुभवी मनुष्य ध्यान को सर्वोत्कृष्ट व्यायाम मानते हुये उसे शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार के विकारों के निवारण में उपयोगी समझते हैं। ध्यान में जो तन्मयता होती है, वह कभी किसी प्रकार का रोग उत्पन्न नहीं होने देती। यही कारण है कि योगीजन ध्यान को इहलौकिक और पारलौकिक दोनों सुखों का कारण मानते हैं।

इसीलिये नेत्र विशेषज्ञों के मत में भी ध्यान में निमग्न होना सभी प्रकार के नेत्र रोगों का अनुभूत उपाय है। उसके लिए प्रातःकाल सूर्य के सामने बैठ कर नेत्र बन्द करें और उन पर दोनों हाथों की हथेलियां इस प्रकार रख लें कि उनकी झिरियों (सन्धियों) से उन पर आने वाली किरणें पलकों पर पड़कर उन पर अपना प्रभाव डालें।

यद्यपि यह क्रिया पामिंग के समान है, फिर भी इसमें विशेषता यह है कि नेत्रों पर उक्त प्रकार से हथेली रखने की क्रिया को ८-१० मिनट तक करने के पश्चात् नाड़ी शोधन प्राणायाम करें। (इस प्राणा-

यामकी विधि इसी पुस्तक में अन्यत्र लिखी हैं) उक्त क्रिया के पश्चात् नाड़ी शोधन प्राणायाम का अत्यन्त अनुकूल प्रभाव पडता है ।

उक्त प्राणायाम के पश्चात् बांयी नासा से श्वास खींच कर जितनी देर तक भीतर रोके हुए कुम्भक कर सकें, उतनी देर तक करें । उसके साथ ही मन को विकार रहित रखकर अपने इष्टदेव का ध्यान करें और नेत्र-दृष्टि को चाहें तो नासिका के अग्रभाग में स्थिर करें अथवा भौंहों के मध्य में स्थिर करके चित्त को बाह्य विषय से प्रथक रखें, ऐसी स्थिति में बाहरी सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता । यह क्रिया नित्य प्रति करते रहने से सब प्रकार के नेत्र-रोगों को समूल नष्ट करने में सहायक होती है ।

ध्यान की क्रिया में चित्त की तल्लीनता आवश्यक है

परन्तु, यदि कोई समझे कि ध्यान की मुद्रा में बैठे रहने से ही ध्यान की सिद्धि हो जाती हो तो यह समझना बड़ी भारी भूल होगी । क्योंकि ध्यान की यथार्थं क्रिया वही है, जिसमें चित्त की चञ्चलता का सर्वथा अभाव हो गया हो । यदि चित्त में चिन्ता, शोक, क्रोध अथवा विषयों के चिन्तन की प्रवृत्ति रहती है तो उससे लाभ के बदले हानि ही अधिक होती है ।

यदि आप ध्यान मुद्रा में बैठ कर किसी बात पर विचार करने लगें तो मन उस विचार में ही भटकता रहेगा और आप जिस उद्देश्य से उस क्रिया को कर रहे हैं, उस उद्देश्य की पूर्ति कदापि नहीं होती । इसलिए सबसे पहिला कार्य मन को विचार-रहित, एकाग्र एवं बाह्य विषयों से पृथक रखना है । यदि उसका समुचित रूप से निर्वाह नहीं किया जा सकता तो अपेक्षित लाभ मिलना भी सम्भव नहीं है ।

इसलिए मन को विकार रहित बनाने के लिये सर्वं प्रथम विचार रहित बनाइये । यदि विचार आते ही हों तो उनमें ईश्वर सम्बन्धी मोड़ देने का प्रयत्न करें । अथवा ऐसी भावना करें कि मेरा नेत्र रोग दूर

होता जा रहा है। इस प्रकार की भावना आपकी रोग-निवृत्ति में पूर्ण रूप से सहायक हो सकती है।

सूर्य नमस्कार की एक श्रेष्ठ क्रिया

प्रातःकाल सूर्य के सामने खड़े होकर पहिले हाथ जोड़कर नमस्कार कीजिए और फिर हाथों को आँखों पर पूर्वोक्त ढङ्ग से ढक लीजिये। साथ ही मन को विकार रहित करके सूर्य शक्ति में तल्लीन कर लीजिए और फिर यह भावना कीजिये कि 'मेरे नेत्र पूर्ण रूप से स्वस्थ हो चुके हैं, अब उनमें कोई विकार नहीं है।' जितनी देर तक आसानी से इस स्थिति में रह सकें, उतनी देर तक रह कर सूर्य को पुनः नमस्कार कीजिए। इस क्रिया के द्वारा भी आप नेत्र-रोगों से छुटकारा पा सकते हैं!

दूर दृष्टि व्यायाम

किसी दरवाजे या खिड़की में फूलों का कोई गमला अथवा अन्य कोई सुन्दर वस्तु रखिये और उससे ३-४ मीटर की दूरी पर खड़े होकर उस वस्तु की ओर दृष्टि कीजिए। अब दांये हाथ की तर्जनी अँगुली को दोनों आंखों के सामने लगभग २० सेंटीमीटर की दूरी पर खड़ी कीजिये और तब अँगुली को देखते हुए खिड़की में रखे हुए उस गमले आदि पर दृष्टि डालिये।

इसमें एक बार अँगुली पर दूसरी बार गमले आदि पर दृष्टि डालनी चाहिये। यह क्रिया एक-एक सैकिण्ड के विश्राम पर क्रमशः दस बार करनी चाहिए और इसे दिन में दो-तीन बार दुहराना चाहिए। इस क्रिया को आप जब चाहें तभी कर सकते हैं। इससे नेत्र ज्योति बढ़ती है और नेत्र के अनेक दोष दूर हो जाते हैं। दूर दृष्टि की वृद्धि में यह अधिक उपयोगी है।

यदि इस अभ्यास को पामिंग की क्रिया करने के पश्चात् करें तो अधिक लाभ उठा सकते हैं।

समीप दृष्टि व्यायाम

किसी खिड़की के सामने एक मीटर की दूरी पर खड़े हो जांय और दोनों हाथों की हथेलियां खोल कर दोनों आँखों के सामने ३० सेन्टी-मीटर की दूरी पर रखें और हथेलियों की रेखाओं को २० सैकिण्ड तक देखें। इसके बाद हथेलियों को हटा कर ४-५ सैकिण्ड तक नेत्रों को बन्द करके आराम दें। इस किया को ६ बार करें।

यह क्रिया समीप दृष्टि को तीव्र करने में बहुत उपयोगी है। इसे दिन में २-३ बार दुहरा सकते हैं। अथवा जब समय मिले तभी कर सकते है। इसका अभ्यास करने के पश्चात् पामिंग की क्रिया करना अधिक लाभदायक होता है।

वृद्धावस्था में दृष्टि तीव्र करने का व्यायाम

यदि दृष्टि बहुत कमजोर पड़ गई हो, विशेष कर वृद्धावस्था के कारण तो किसी खिड़की के सामने एक मीटर की दूरी पर खड़े होकर दोनों हाथों की एक-एक अँगुली को नेत्र-दृष्टि से ३० सेन्टीमीटर की दूरी पर रख कर उसे देखें और फिर खिड़की से बाहर के किसी सुरम्य दृश्य को। इस क्रम से यह क्रिया बारह बार दुहरानी चाहिए। इससे नेत्रों की दृष्टि तीव्र होती है।

यह क्रिया ऐसे कमरे में खड़े होकर करें, जिसके दरवाजे या खिड़की से बाहर वृक्षादि के रूप में कोई रमणीक दृश्य हो। इससे नेत्रों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

झूमने का व्यायाम

आंखों के दोषों को दूर करने में झूमने का व्यायाम बहुत उपयोगी होता है। इसके अभ्यास से अक्षिगोलक एवं उसके समीपस्थ भाग की नस-नाड़ियां मुलायम और ढीली होने लगती हैं। नस-नाड़ियों के तनाव को दूर करने में यह क्रिया अत्यन्त हितकर समझी जाती है। इसकी विधि इस प्रकार है।

सीधे खड़े हो जायें और शरीर को बिल्कुल ढ़ीला छोड़ दें। तदुपरान्त दांयी-बांयी ओर झूमना या हिलना आरम्भ करें। उसी प्रकार हिलें जैसे कि घड़ी का पेंडुलम हिलता है। इस क्रिया के साथ पांवों की एड़ियों को बारी-बारी से उठा कर धरती से अधर करते रहें, किन्तु पांवों को दृढ़ता पूर्वक धरती पर जमाये रखें।

यह क्रिया नित्य प्रति प्रातःकाल १०-१० मिनट तक करें और आवश्यकता होने पर २-३ बार दुहरावें। आंखों में थकान अथवा दर्द का अनुभव होने पर इसे करें तो शीघ्र लाभ प्रतीत होता है। नेत्रों के स्नायु-जाल को तनाव-रहित करने में इसका अत्यन्त महत्व है।

यदि इस क्रिया को किसी खिड़की के सामने खड़े होकर करें तो अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। खुले नेत्रों से आप ज्यों-ज्यों झूमेंगे या हिलेंगे त्यों-त्यों खिड़की भी आपसे विपरीत दिशा में झूमती या हिलती दिखाई देगी। जब आपको यह अनुभव होने लगे कि तनाव नष्ट हो गया है, तब आंखों को बन्द करके झूमते रहें। इन क्रियाओं को क्रमशः दो-दो मिनट के अन्तर से १०-१२ बार करना चाहिए।

स्मरण शक्ति या कल्पना शक्ति बढ़ाने का अभ्यास

इस अभ्यास से भी नेत्रों की शक्ति तीव्र की जा सकती है। जिन लोगों की दृष्टि कमजोर हो, उनके लिए अधिक उपयोगी है—

(१) किसी भी छोटी वस्तु की ओर देखें तथा उसके रूप आकार का ध्यान रखते हुए दृष्टि को उसके किनारों पर चारों ओर घुमावें और मन में उसका चित्र निश्चित करलें। अब नेत्रों को बन्द करें उस वस्तु के सभी अवयवों को याद रखने का प्रयत्न करें। तदुपरान्त नेत्रों को खोल कर पुनः उसी वस्तु को देखें। यह क्रिया ५ मिनट तक करनी चाहिए यदि चश्मा लगाते हों तो इस क्रिया के समय उसे उतार दें।

(२) किसी पुस्तक में से एक शब्द चुनकर उसे देखें और फिर आँखें बन्द करलें। फिर कुछ देर बाद आंखें खोलकर पुनः उस वस्तु को देखें।

जब वह शब्द देखने में अधिक काला प्रतीत हो तो समझिये कि नेत्र-ज्योति में कुछ अनुकूल परिवर्तन हुआ है। यह क्रिया जितनी बार दुहरा सकें, दुहरावें ? इससे दृष्टि तीव्र होती है।

(३) किसी पुस्तक में से एक पंक्ति चुनकर उसे देखें और फिर उसके मध्य के एक शब्द को ध्यान से देखे और आँखें बन्द कर लें। कुछ देर बाद आँखें खोलकर उसी शब्द को देखें तो वह उस पंक्ति के अन्य शब्दों की अपेक्षा अधिक साफ दिखाई देगा। इस प्रकार इस अभ्यास को ५ मिनट तक बार-बार दुहरावें तो वह शब्द और भी साफ प्रतीत होगा तथा पंक्ति के अन्य शब्द धुंधले प्रतीत होंगे। यदि ऐसा हो तो समझना चाहिए कि दृष्टि तीव्र होती जा रही है।

पलक मारने का व्यायाम

इसे ब्लिंकिंग कहते हैं। इसमें बार-बार पलक मारना होता है। यद्यपि पलक झपकने की क्रिया प्राकृतिक रूप से स्वतः होती रहती है, नेत्र खुलते और बन्द होते रहते हैं। तथापि जब नेत्र दोष प्रबल होता है, तब उनकी पेशियों में खिचाव उत्पन्न होकर नेत्रों में स्तम्भ उत्पन्न हो जाता हैं और पलक झपकने की क्रिया स्वाभाविक रूप से नहीं हो पाती।

उस विकृति को दूर करने के लिए पलकों को बार बार बन्द करने खोलने का अभ्यास करना चाहिए। इससे पेशियों का खिचाव दूर होने में अत्यन्त सहायता मिलती है। नेत्रों की थकान दूर होने और ताजगी आने में इसका उपयोग सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

शिर को इधर-उधर घुमाने का व्यायाम

पूर्व की ओर मुख करके सीधे, समान रूप से बैठें शिर को धीरे-धीरे इधर-उधर घुमावें। यह क्रिया दोनों नासा-पुटों से श्वास खींचकर करनी अधिक उपयोगी रहती है। यदि सूर्य के सामने बैठकर नेत्र मूँद लें और तब इस क्रिया को करें तो बहुत लाभकारी होगा। इसमें श्वास

रोकने की क्रिया १५-२० सैकिन्ड तक करें और फिर जितनी बार दुहरा सकें, उतनी बार दुहरावें। इससे नेत्रों की पेशियों में उत्पन्न हुआ तनाव शीघ्र दूर हो जाता है।

पलकों को उठाने-छोड़ने का व्यायाम

आँखों को बन्द करलें और उनकी पलकों को चुटकियों से पकड़ कर ऊपर उठावें और फिर छोड़ दें। यह क्रिया माँस पेशियों के तनाव को दूर करने में बहुत उपयोगी है। इससे नेत्र शिराओं का तनाव भी दूर हो जाता है तथा अनेक नेत्र-विकार मिट जाते हैं।

अँगुलियों को मालिश का व्यायाम

नेत्रों के पर्दों पर हाथों की अँगुलियों से हल्की-हल्की मालिश करें। जब भी अँगुलियाँ पलकों से हटें, आँखें खोल लें और पुनः पलकों पर अँगुलियाँ लाते समय पलकों को बन्द कर लें। यह व्यायाम भी आँखों नस-नाड़ियों का तनाव दूर करने में बहुत लाभदायक है। इसके नियमित अभ्यास से नेत्रों के अनेक विकार शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

ग्रीवा के दाँये-बाँये भाग की मालिश

सीधे समान रूप से पूर्वाभिमुख होकर बैठें और हथेलियों को पूरी खोल कर आँखों पर रख लें तथा अँगुलियों से आँखों के कोनों को दबाते हुए मलें तथा कान के ऊपर की ओर ले जाकर ग्रीवा की दाँयी-बाँयी ओर की नाड़ियों को कन्धे तक दबाते हुए मालिश करें। यह क्रिया नेत्र दोषों को दूर करने में अत्यन्त हितकर है।

इस व्यायाम की दूसरी विधि यह भी है कि अँगुलियों को नेत्रों के ऊपर की अस्थियों के मध्य में रखकर दबाते हुए मलें और उन्हें मस्तक तक लावें तथा कान के ऊपर की ओर लेजाकर ग्रीवा के दाँयी-बाँयी ओर की नाड़ियों से कन्धे तक मालिश करें। यह विधि पूर्व विधि से अधिक उपयोगी है।

दृष्टि साधन का व्यायाम

पद्मासन लगाकर बैठिए और सामने की ओर देखिये। अच्छा हो कि सामने का दृश्य बहुत मनोरम या पुष्प-फल युक्त वृक्षादि का हो। यदि किसी बाग-बगीचे में बैठकर इस व्यायाम को करें तो अधिक हितकर होगा। यदि यह सम्भव न हो तो दीवार पर कोई ऐसा पर्दा या भित्ति चित्र बना हो, जिसमें पेड़-पौधे या फूलवारी का दृश्य हो। उस दृश्य को बार-बार पलक झपकाते, उठाते देखिये। इससे दृष्टि साधन होकर सभी प्रकार के नेत्र-दोष दूर होते हैं।

दृष्टि परिवर्तन का व्यायाम

इसकी क्रिया उपर्युक्त प्रकार से बैठने पर आरम्भ होती है। उस प्रकार बैठकर पहिले सामने की ओर देखें, फिर तुरन्त नीचे की ओर तथा बाद में ऊपर की ओर देखिये। इस क्रिया से नेत्रों की नाड़ियों का तनाव दूर होकर दृष्टि तीव्र हो जाती है।

शिर को मोड़ने का व्यायाम

सीधे बैठें. शरीर भी समान अवस्था में रहे अर्थात् टेढ़ा-मेढ़ा न रखें। अब शिर को एकदम पीछे की ओर जितना मोड़ सकें, मोड़ें तथा उसके बाद आगे की ओर इतना झुकावें कि ठोड़ी का भाग कण्ठ कूप से जा लगे। इस व्यायाम का थाइराइड ग्रन्थि पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है, जो कि नेत्र-रोगों को दूर करने में भी उपयोगी है।

लेटने का श्रेष्ठ व्यायाम

कार्य करते समय अधिक थकान उत्पन्न हो जाती है, जिससे आँखों में भी तनाव उत्पन्न हो जाता है। उसे दूर करने के लिए पीठ के बल सीधे लेटिये और आँखों को बन्द कर लें। उस स्थिति में शरीर को ढीला छोड़ देना चाहिए। यह व्यायाम नेत्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

चेहरे की मालिश का व्यायाम

समान रूप से सीधे बैठें और पलकों को हथेलियों की गद्दियों से धीरे-धीरे मलें। इस प्रकार समूचे चेहरे को भी इसी प्रकार मलना चाहिए। यह क्रिया प्रत्येक बार में १-१ मिनट करें और ५-६ बार दुहरावें। इससे नेत्र-नाड़ियों का सब प्रकार का तनाव शीघ्र ही दूर होता है।

नेत्रोन्मीलन का व्यायाम

सीधे बैठकर आँखों को बन्द करें, उन पर काले कपड़े की गद्दी सी बनाकर धीरे-से रख लें। एक मिनट तक इस प्रकार नेत्रों को बन्द रख कर गद्दी हटावें और तुरन्त नेत्रों को खोल कर सामने के दृश्य को दूर तक देखें। इस क्रिया को भी नित्य ५-६ बार दुहराया करें।

कपोल उत्फुल्लन व्यायाम

पद्मासन लगाकर शान्त चित्त से बैठें और सामने की ओर देखें। फिर दोनों ओष्ठों को बाहर की ओर निकाल कर और उसमें जिह्वा को फँसा कर बाहर से वायु को खींचकर मुख में भरते हुए कपोलों को फुला लें। उसी समय दोनों नेत्रों को भी बन्द करलें तथा इस क्रिया को १५-२० सैकिन्ड करने के पश्चात् मुख मार्ग से ही श्वास को बाहर निकाल दें। यह क्रिया ८-१० बार दुहरानी चाहिए। इससे नेत्रों और उनके आस-पास की पेशियों का खिचाव दूर होकर स्वाभाविकता आती तथा अनेक नेत्र दोष दूर हो जाते हैं।

नेत्र रोग निवारिणी योग क्रियाएँ

योग के आठ अंग

योग के आठ अंग हैं—यम. नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें यम और नियम के प्रयोग का उद्‌देश्य मानसिक और शारीरिक शुद्धि करना है। यदि यमों और नियमों का पालन किया जाता रहे तो कभी किसी प्रकार का रोग ही उत्पन्न न हो पावे।

यम-नियमों में सत्य, अहिंसा. अस्तेय ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, आर्जव, मिताहार, शौच, तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान ईश्वर-पूजन, सिद्धान्त-श्रवण, लज्जा, बुद्धि और हवन आदि शुभ कर्मों का समावेश है। जो लोग इनके अनुकूल आचरण करते हैं, उनके रोगग्रस्त होने का कोई कारण ही नहीं हो सकता। इसीलिए योगाचार्यों ने इन सबको अष्टाँग योग के प्रारम्भिक दो अंगों के रूप में अनिवार्य रूप से स्वीकार किया है।

मन और शरीर की शुद्धि तथा रोग से बचाव

मन और शरीर के शुद्ध रहने की अवस्था में कोई रोग उत्पन्न नहीं हो सकता। अथवा जिन मनुष्यों को कोई रोग हुआ हो, वह इनका पालन करके उस रोग से छुटकारा पा सकता है।

योगीजन शरीर की शुद्धि के लिए सप्त साधन करते हैं—शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव. प्रत्यक्ष और निर्लिप्त। इनमें शोधन के लिए षटकर्म, दृढ़ता के लिए आसन, स्थैर्य के लिए मुद्रायँ, धैर्य के लिए प्रत्याहार, लाघव के लिए प्राणायाम, ध्येय के दर्शनार्थ ध्यान तथा निर्लिप्तता के लिए समाधि का अभ्यास किया जाता है।

षटकर्म में धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति कर्म का समावेश माना गया है। धौति कर्म के अनेक प्रकार हैं, किन्तु उनमें एक प्रकार 'वारिसार धौति' का अधिक उपयुक्त समझना चाहिए। इसमें मुख से धीरे-धीरे ताजा पानी पीकर कण्ठ तक भर लिया जाता और फिर उसे परिचालित करके अधोमार्ग से निकाल दिया जाता है।

धौति कर्म में ही दन्तधौति और दन्तमूल धौति आदि का निर्देश है। इनमें दाँतों, जबड़ों तथा गले की सफाई को अनिवार्य बताया गया है। और यह एक तथ्य भी है कि मंजन या दाँतुन के द्वारा दांतों की और मसूड़ों की सफाई अवश्य की जानी चाहिए अन्यथा कोई न कोई रोग उत्पन्न हो ही सकता है। इसी प्रकार गले में भी अँगुलियाँ डालकर वहाँ का कफ आदि निकाल दिया जाय तथा कुल्ले करके मुख की भी ठीक प्रकार से सफाई की जाय। ऐसा करना दैनिक रूप से अनिवार्य है। क्योंकि नेत्र रक्षा के लिए भी यह क्रियाएँ वहुत उपयोगी हैं

कर्णरन्ध्र धौति के द्वारा कानों को साफ करते रहने का विधान भी आवश्यक है। इसमें कानों में तर्जनी और अनामिका अँगुलियाँ डालकर उन्हें मैल रहित करते रहना चाहिए।

कान, दांत और नेत्र आदि अवयवों का परस्पर में अभिन्न सम्बन्ध है। इनमें से यदि कोई भी अवयव अशुद्ध है तो अन्य अवयवों की शुद्धि व्यर्थ रहती है। इसलिए नेत्र रोग निवारण में कानों की सफाई का भी अनुकूल रूप से उपयोग समझा जाता है।

दन्त धौति में ही कपालरन्ध्र धौति का निर्देश है। उसमें दाँये हाथ के अँगूठे से कपालरन्ध्र का मार्जन (मालिश) किया जाता है। इससे नेत्रों को बड़ा लाभ पहुंचता है।

नेत्र रोगों में कपालरन्ध्र शोधन का महत्व

कपालरन्ध्र के शोधन का वड़ा महत्व है। इससे मस्तिष्क के विकार

नेत्र के विकार तथा नासिका के विकार शीघ्र ही दूर होने लगते हैं। यदि यह क्रिया जल-योग से की जाय तो अधिक लाभकारी सिद्ध होती है। इसकी विधि इस प्रकार है—

धरती पर बैठ जांय और बांये हाथ में पानी से भरा हुआ पात्र लेकर कपाल पर डालें और दांये हाथ के अंगूठे या अंगुलियों से रगड़ते रहें। अथवा दांयी हथेली से रगड़ना चाहिए। यदि यह क्रिया नदी के जल में खड़े होकर की जाय तो बहुत लाभदायक होगी। नेत्र रोगों में इससे बहुत शान्ति मिलती है।

नेति क्रिया का महत्व

योग क्रियाओं में नेति क्रिया का भी अपना महत्व है। शरीर को शक्तिशाली बनाने के लिए उसके प्रत्येक अवयव का शुद्ध होना आवश्यक है। उसके लिए जिन क्रियाओं की कल्पना की गई, उनमें नेति क्रिया को भी प्रमुख स्थान दिया गया। नेति क्रिया के द्वारा शोधन और रोग-निवारण, दोनों ही कार्य सम्पन्न हो जाते हैं।

नेति क्रिया का प्रयोग नासिका द्वारा होता है। उसी नासिका द्वारा जो कि श्वास लेने में सहायक होती है। उसी नासा-मार्ग से शरीर की गन्दगी भी नजले के रूप में बाहर निकलती है। नासा-मार्ग ही नहीं, कान नेत्र एवं मुख के द्वारा भी मैल, कीचड़ एवं कफ के रूप में बहुत-सा मल बाहर निकलता रहता है।

शरीरस्थ नाड़ी-समूह में तीन प्रमुख नाड़ियाँ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना भी विद्यमान है। यह तीनों नाड़ियां सभी में शीर्षस्थ मानी जाती हैं। क्योंकि इनमें सांसारिक और दिव्य दोनों प्रकार की शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। यह तीनों नाड़ियाँ जिस दिव्य अमृत का स्राव करती हैं, वह अमृत यदि मनुष्य को पूर्ण में प्राप्त हो सके तो फिर उस पर कभी किसी रोग का आक्रमण नहीं हो सकता।

उक्त तीनों नाड़ियों का मिलन स्थान नासा ही है। इड़ा को चन्द्र नाड़ी भी कहते है, जो कि नासिका के बांये छिद्र में रहती है। पिंगला सूर्य नाड़ी कहलाती है और दांये नासा-छिद्र में रहती है। सुषुम्ना का स्थान इन दोनों के मध्य में है। कुछ योगिजन इड़ा को गंगा, पिंगला को यमुना और यमुना को सरस्वती कहते हैं और इस प्रकार वे नासिका को त्रिवेणी का संगम मानते हैं। यदि वह स्वच्छ रहता है तो मनुष्य निरोग और शक्तिशाली बना रहता है, किन्तु उस नाड़ी-संगम के स्वच्छ होने की अवस्था में मनुष्य को रोगी और बलहीन होने की विवशता पल्ले पड़ती है।

बहुत बार अनेक कारणों से मस्तिष्क में मल रुककर संचित होने लगता है। उसके कारण विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उन रोगों में नेत्रों के अनेक रोग, जैसे दृष्टिमांद्य, रात्र्यान्ध्य, नेत्र-शूल, परवाल, मोतियाबिन्दु आदि सम्मिलित हैं। यदि मस्तिष्क में सचित होने वाले उस मल को किसी उपाय से स्वच्छ करते रहें तो नेत्रों के ही नहीं, अनेकानेक रोगों से बचाया जा सकता है।

उन उपायों में नेति कर्म भी एक मान्य उपाय है। नेति कर्म दो प्रकार का माना जाता है—(१) जल नेति, और (२) सूत्र नेति। पहिले जलनेति पर प्रकाश डालकर सूत्रनेति पर प्रकाश डालेंगे।

जलनेति और उसका सरल प्रयोग

जलनेति का अभिप्राय प्रायः नासिका के द्वारा पानी पीना है। जल नेति के लिए एक टोंटीदार लोटा लेना होता है। उसमें पानी भर कर नाक में चढ़ाने की क्रिया की जाती है। यदि गर्मी की ऋतु हो तो ताजा ठण्डा पानी और शीतकाल हो तो गुनगुना पानी लेकर उसमें थोड़ा-सा सेंधा नमक मिलाकर किंचित् नमकीन कर लें। यह पानी छान कर लोटे में भरा जाय।

अब मुख को सीधा रखकर यह देखें कि कौन-सा स्वर चल रहा है ? जिस नासिका का स्वर चल रहा हो, उसमें लोटे की टोंटी लगाकर पानी पीने लगें। इस प्रकार एक नासा छिद्र से पानी पीने के बाद दूसरे छिद्र से भी उतना ही पानी खींचकर पीवें। इस प्रकार जल पीने से आँखों से पानी जाने, दर्द या लाली होने, खुजली चलने अथवा गुहेरी आदि होने में लाभ होता है। नेत्र-रोगों के अतिरिक्त जुकाम, खाँसी, शिर दर्द, स्वर भंग, केशश्वेतता आदि अनेकानेक रोग भी इस क्रिया से दूर हो जाते हैं।

जलनेति के लिए एक टोंटीदार लोटा बनवालें। ऐसा लोटा इस कार्य के लिए विशेष रूप से बना बनाया भी मिल जाता है। उस लोटे में ठण्डा पानी भर कर बैठ जाँय और नासिका के एक छिद्र में टोंटी को प्रविष्ट करें, जिससे कि पानी दूसरे नासा-छिद्र से निकल जाय। फिर दूसरे छिद्र में टोंटी लगाकर अन्य छिद्र से जल को निकलने दें। जब जल निकल जाय तब तब जोर-जोर से श्वास-प्रश्वास लें, जिससे कि समूचा पानी निकल जाय।

नाक के पानी को भी निकालते रहना भी इसमें बहुत आवश्यक है। गीले नासा-छिद्रों को तौलिया से पोंछते रहें। यह क्रिया नेत्रों की ज्योति को तीव्र करने में बहुत उपयोगी है।

यदि टोंटीदार लोटा न हो तो नासिका के द्वारा पानी पीना उचित है। एक कटोरी में स्वच्छ ठण्डा पानी भर कर नाक से लगावें और ऊपर की ओर खींचें। इस विधि से पानी भीतर जाने लगेगा। इस समय मुख से श्वास लें। यह क्रिया शौच के पश्चात् करनी चाहिए।

नासिका द्वारा दुग्ध पान

जलनेति में नासिका द्वारा जल पीने के समान दुग्ध पीने का भी विधान है। यदि यह कहा जाय कि इस प्रकार पिया जाने वाला दूध मुख के द्वारा पीने की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है।

इस क्रिया में दूध गाय का लिया जाना अधिक लाभ कर होता है। क्योंकि अन्य सब पशुओं के दूध की अपेक्षा गो दुग्ध में सर्वाधिक गुण हैं। परन्तु नासिका द्वारा पीने के लिए जो दूध लिया जाए, वह न तो अधिक ठण्डा हो, न अधिक गर्म। उसका तापमान प्रायः धारोष्ण दुग्ध के समान होना चाहिए।

मुख द्वारा दूध पीने वाले व्यक्तियों को यह ध्यान रखना चाहिए कि दूध एक दम न पी लिया जाय। उसे धीरे-धीरे पीवें, जिससे कि उसका सम्पर्क बाहरी स्वच्छ वायु (ऑक्सीजन) के साथ हो सके और उसके साथ शरीर में ऑक्सीजन भी पर्याप्त मात्रा में पहुँच सके।

इसी प्रकार नासिका द्वारा दुग्ध-पान भी धीरे-धीरे ही किया जाना चाहिए। इसकी क्रिया जल नेति के समान ही है। एक नासिका से जितना दूध पीवें, उतना ही दूसरी नासिका से पीना उचित है। ऐसा करने से इड़ा आदि नाड़ी त्रय के स्राव की पूर्ण मात्रा में उपलब्धि न होने वाली न्यूनता की पूर्ति स्वतः हो जाती है और फिर नेत्र, मुख, नासा आदि के सभी विकार दूर हो जाते हैं।

सूत्र नेति का उपयोगी प्रयोग

नेत्रों के सभी रोगों में सूत्र नेति का महत्व भी किसी प्रकार कम नहीं है। इससे आंखों के अनेक विकार स्थायी रूप से दूर हो जाते हैं। दृष्टि की कमजोरी, आंखों के आगे बालों का घूमना य मक्खी-मच्छर से उड़ना आदि दोषों में यह बहुत उपयोगी है। विशेषज्ञों का मत है कि सूत्र नेति का लगातार २-३ महीने तक प्रयोग कर लिया जाय तो दृष्टि इतनी ठीक हो जाती है कि चश्मे की भी आवश्यकता नहीं रहती।

योग शास्त्रों के मत में सूत्रनेति के लिए बिलश्त अर्थात् बारह अँगुल लम्बी सूत की रस्सी लेनी चाहिए। उसे मोम आदि लगा कर चिकनी और मजबूत कर लें तथा नासा रन्ध्र में भीतर डालकर मुख के

द्वारा बाहर निकालें। दोनों नासा-रन्ध्रों में पृथक-पृथक नेति डालनी चाहिए।

नेति के लिये जो डोरी बनाई जाय वह रोगी के नासा-रन्ध्र के अनुपात से बननी चाहिए। वह इतनी मोटी न हो कि नासा-रन्ध्र की दीवालों को रगड़ती हुई चले, जिसके कारण नासिका में पीड़ा या शोथ आदि कोई बिकृति उत्पन्न हो जाय। न वह इतनी पतली ही हो कि उसका दबाब कपाल, कण्ठ, श्रोत्र, नेत्र तथा मुख आदि केन्द्र भाग की नाड़ियों पर ही न पड़े। वरन् उसकी मोटाई इतनी हो कि उक्त केन्द्र भाग की नाड़ियों को स्पर्श करती या घर्षण करती हुई मुख मार्ग से बाहर निकल आवें, किन्तु नासा-रन्ध्र की दीवारों को अपनी रगड़ से न छील दें।

नेति बनाने में चरखे का कता हुआ सूत्र लेना अधिक उपयोगी है। नेति प्रायः २७, ८१, १०८ या १६२ तार की बनाई जाय। तार की यह संख्या नाक के छेद को देख कर निर्धारित करनी चाहिये। नेति की लम्बाई ५०-६० सेन्टीमीटर तक हो सकती है और वह तैयार होने पर इतनी कड़ी रहे कि बीच से पकड़ कर सीधी खड़ी करना चाहें तो खड़ी रह सके। इसीलिए विद्वानों ने उसमें मोम आदि लगाने का निर्देश किया है।

इस प्रकार सूत्रनेति बनाने के लिए डोरों को मिलाकर बटना चाहिए। ऐसा करने से वह एक मजबूत और अपेक्षित मोटाई वालीडोरी का रूप ले लेते हैं। यही डोरी सूत्रनेति के नाम से प्रसिद्ध है, जो कि आन्तरिक मल को स्वच्छ कर शरीर को निरोग बनाने में उपयोगी हैं।

यह डोरी नासा-छिद्र में डाल कर कर मुख में निकालते हुए धीरे धीरे चलाई जाती है। इससे आन्तरिक मल का शोधन होने के कारण

नेत्रों को भी लाभ पहुंचता है। आज कल पाश्चात्य चिकित्सक भी इस क्रिया को परिष्कृत रूप से करने के लिये कैथेटर का प्रयोग करते हैं।

नेत्र रोग नाशक योगासन

योग-क्रियाओं में आसनों का अत्यधिक उपयोग है। यदि यह कहा जाय कि समूचे योगाभ्यास की भित्ति योगासनों के आधार पर ही टिकी हुई है तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी।

योग के आसनों की संख्या तो बहुत है, परन्तु नेत्र-रोगों को दूर करने में कुछ आसन ही अधिक उपयोगी होते हैं। यहाँ उनका वर्णन किया जाना असामयिक नहीं होगा—

सर्वांगासन
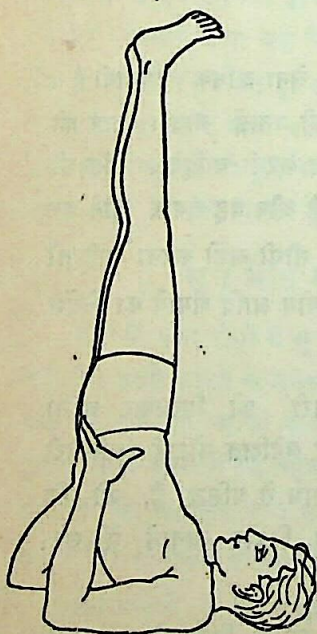
सर्वांगासन

यह आसन नेत्र विकारों को दूर करने और नेत्रों की ज्योति बढ़ाने में अत्यन्त महत्व पूर्ण है। सामान्यतः यह अनेक रोगों को दूर करने और शरीर को बल एवं पुष्टि प्रदान करने में बहुत उपयोगी है। इससे मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं के भी अनेक दोषों का निवारण होता है।

धरती पर कोई दरी आदि बिछा कर पीठ के बल लेट जाने से इस आसन का आरम्भ होता है। उस समय दोनों पाँवों को परस्पर मिला कर सीधे रखें तथा दोनों हाथ भी सीधे और स्वाभाविक अवस्था में रखे जाँय। फिर धीरे-धीरे दोनों पाँवो को ऊपर उठावें और कमर को

भी ऊपर की ओर करते हुए तथा दोनों हाथों से कमर को सहारा देते हुए और भी ऊँची करें। इसमें ग्रीवा और कन्धे तक धरती पर रहेंगे तथाठोड़ी वक्षस्थल से स्पर्श करती रहेगी। इस प्रकार ग्रीवा से पांवों की अँगुलियों पर्यन्त का समूचा भाग ऊपर की ओर सीधा तना रहेगा और उसका पूरा भार कन्धों, हाथों और ग्रीवा पर रहेगा। दृष्टि सीधी तथा पांवों के अँगूठों पर टिकी रहनी चाहिये।

यह आसन आरम्भ में २-४ मिनट तक करें और धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाते जांय। इस प्रकार इसे आसानी से ३० मिनट तक कर सकते हैं।

योग मुद्रासन

यह आसन भी नेत्र-विकारों को दूर करने में उपयोगी है। इसमें पद्मासन लगाकर बैठना होता है। उसके बाद शरीर के ऊपरी भाग को आगे की ओर झुका लें और दोनों हाथों को भी कुहनियों से मोड़ कर जांघों के मूल में स्थिर कर लें। समूची क्रिया चित्र के समान करे—
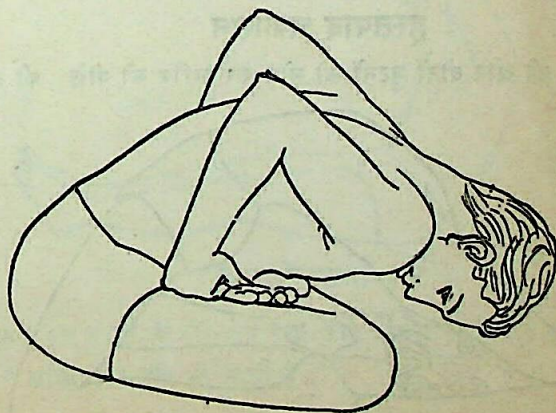
योगमुद्रासन

इसके अभ्यास से कण्ठ, नासिका, कानों के विकार दूर होने में बड़ी सहायता मिलती है। हृदय के लिए भी यह आसन अत्यन्त उपयोगी है।

नौका आसन

धरती पर पेट के बल लेटने से यह आसन सिद्ध होता है। इसमें हाथों और पैरों को ऊपर की ओर उठावें तथा शिर को भी धरती से अधर कर लें, जिससे कि पेट का भाग धरती पर टिका रहे और पांव तथा शिर आदि का भाग अधर रहे।
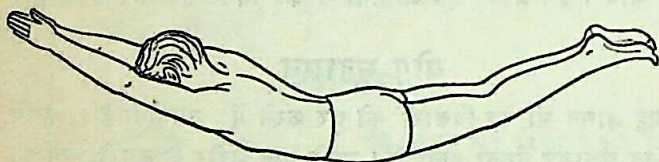
नौकासन

यह आसन कण्ठ रोग, हिक्का रोग तथा नेत्र-रोग दूर होने में बहुत सहायता मिलती है।

हस्तपाद चक्रासन

पीछे की ओर दोनों घुटनों को मोड़ कर शरीर को पीछे की ओर
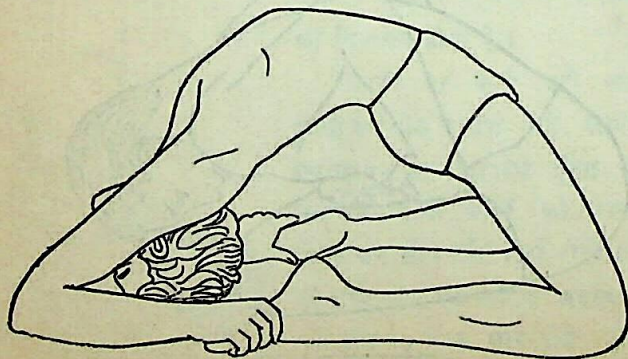
हस्तपाद चक्रासन

ही धीरे-धीरे झुकावें और दोनों हाथों से, दोनों पांवों के पंजों को पकड़ लें। इस प्रकार समूचे शरीर का भार घुटनों और कुहनियों पर रहेगा।

यह आसन भी नेत्रों के अनेक विकारों को दूर करने में अत्यन्त लाभ दायक समझा जाता है।

शयनोत्थानासन

सीधे बैठ कर पांवों को आगे की ओर सीधे फैला लें और फिर हाथों को परस्पर मिला कर आकाश की ओर ऊँचे उठावें। यह आसन चित्र के समान होना चाहिए।
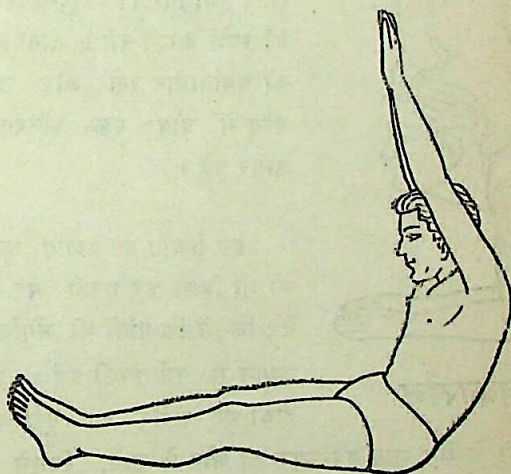
शयनोत्थानासन

इससे सब प्रकार के नेत्र-रोग तथा उदर-विकार आदि दूर होते हैं। शरीर में शक्ति और पुष्टि भी आती है।

वृश्चिकासन

यह आसन नेत्र-रोगों को दूर करने में बहुत उपयोगी है। इसमें

शीर्षासन, चक्रासन और वकासन तीनों का समावेश होने के कारणशरीर के सभी अवयवों के लिए हितकर अन्य कोई आसन नहीं है। यद्यपि इसका विवरण देखने से ऐसा लगता है कि कोई वहुत कठिन आसन होगा। परन्तु बात ऐसी नहीं है। कुछ दिनों के नियमित अभ्यास से ही इसकी क्रिया बहुत सरल प्रतीत होती है। इसकी विधि इस प्रकार है—
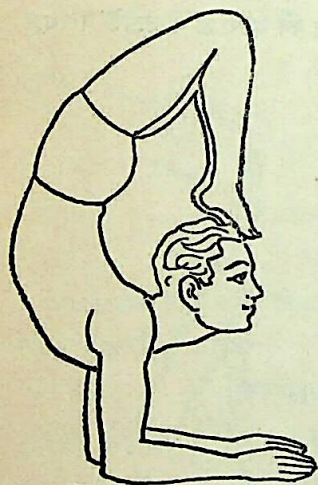
वृश्चिकासन

धरती पर उकड़ूँ वैठ कर दोनों हाथों को आगे की ओर कुहनियों से अँगुलियों तक सीधे रख लें। हथेलियों की गद्दियाँ आसन को स्पर्श करती रहें। दोनों हाथों को समानान्तर रखें और उनके मध्य में प्राय: एक बलिश्त का अन्तर रहे।

इस स्थिति के पश्चात् घुटनों को भी मिला कर धरती पर टेक दें, जिससे कि पाँवों की अँगुलियां आसन से स्पर्श करती रहें। अब हाथों पर शरीर का पूरा भार रखते हुए शरीर के शेष भाग को ऊपर की ओर ले जांयें, जिससे कि पांव ऊपर की ओर जाकर घुटनों से नीचे की ओर मुड़ कर शिर के ठीक ऊपर आ जाँय।

जिस समय शरीर को ऊपर की ओर उल्टा उठावें, उस समय कन्धे और ग्रीवा कड़ी रखनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो शिर धरती से टकरा सकता है। इसलिए पूरी शक्ति के साथ पाँवों और कमर को शीघ्रता पूर्वक ऊपर की ओर उछालने का प्रयत्न करना

होता है । ऐसा करने से आसन की पूर्ण स्थिति पहुँच कर अपने भार को संभालने में समर्थ हो सकते हैं, अन्यथा पूर्व स्थिति में आ जाना होगा। किन्तु यदि उछाला आवश्यक से अधिक जोर से ले लेंगे तो कलामुण्डी खाने का खतरा रहेगा । इसलिये आप यह ध्यान रखें कि इस आसन की पूर्णता चित्र के समान बिच्छू जैसी आकृतिबना लेने से होतीहै, जोकि धीरे-धीरे अभ्यास करने से बनेगी ।

यह आसन आरम्भ में २०-२५ सैकिण्ड तक करना पर्याप्त है । फिर अभ्यास बढ़ने पर ५ मिनट तक कर सकते हैं । इसके अभ्यास से अनेक रोगों की निवृत्ति के साथ, नेत्र-रोगों का भी निवारण हो जाता है । परन्तु यदि रोगी पित्त की अधिकता से पीड़ित हो तो उसे इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए ।

शीर्षासन

यह आसन योगासनों में सर्वाधिक प्रसिद्ध है । इसमें शिर नीचे और
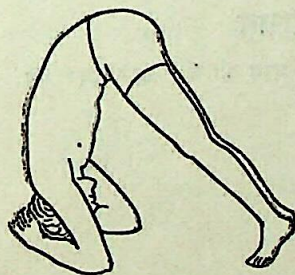
शीर्षासन (१)

शीर्षासन (२)

पाँव ऊपर रके जाते हैं। इसकी दो विधियां प्रायः प्रमुख रूप से प्रचलित हैं। उनका वर्णन निम्न प्रकार है–

प्रथम विधि में शिर को नीचे की ओर करके खड़ा होना होता है और फिर दोनों पांव परस्पर मिलाकर चित्र के समान धरती पर टिका लिये जाते हैं। शिर को सहारा देने के लिए दोनों हाथों की हथेलियाँ इधर-उधर लगाली जाती हैं। देखें चित्र नं० १

दूसरी विधि के शीर्षासन में शिर नीचे और पांव आकाश की ओर सीधे तानने होते हैं। यदि शिर के नीचे तकिया रख लिया जाय तो इस अभ्यास में बड़ी सुविधा रहती है हाथों की हथेलियां शिर के इधर-उधर इस प्रकार लगा लेनी चाहिये कि जिससे शिर को सहारा मिलता रहे। देखें चित्र नं० २

यह आसन अनेक रोगों को दूर रहने में उपयोगी है, जिनमें मस्तिष्क के रोग और नेत्र-रोग भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस आसन का अभ्यास एक मिनट तक करना पर्याप्त है।

भूमिपाद शिरासन

धरती पर पेट के बल लेट कर नितम्ब भाग को धीरे-धीरे ऊपर की
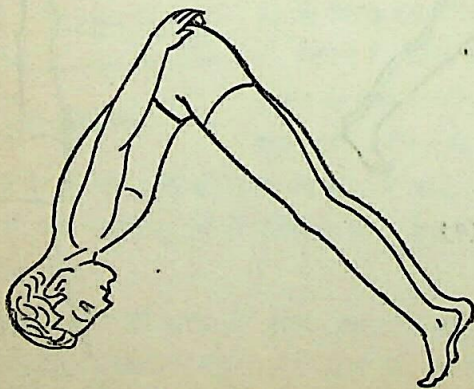
भूमिपाद शिरासन

ओर उठाने से यह आसन बनता है । हाथों को नितम्बों के सहारे रखें तथा शिर और पांवों के बल चित्र के समान खड़े हो जांय ।

यह आसन मस्तिष्क के अनेक विकारों को दूर करने में उपयोगी है। नेत्रों के अनेक विकार दृष्टिमांद्य, रात्र्यान्ध, चकाचौंध आदि में भी बहुत लाभ करता है।

उदर शयनासन

इस आसन की भी दो विधियां प्रचलित हैं प्रथम विधि में पेट के बल बिल्कुल सीधे लेटें और पांवों के पंजों को परस्पर मिला लें तथा हाथों को कुहनियों से मोड़ कर शिर के इधर-उधर लगा लें । देखें चित्र नं० १

दूसरी विधि में पेट के बल लेट कर पांवों के पंजों के साथ-साथ मिलावें और दोनों हाथों को शिर के इधर-उधर से निकाल कर सीधे तान लें । इसमें शरीर दण्ड के समान सीधा रहता है अर्थात् जैसे दण्डवत् प्रणाम किया जाता है, वैसी आकृति रहती है । देखें चित्र नं० २
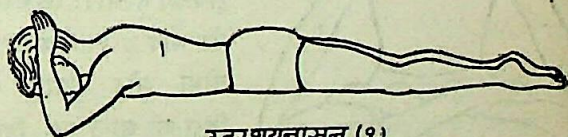
उदरशयनासन (१)
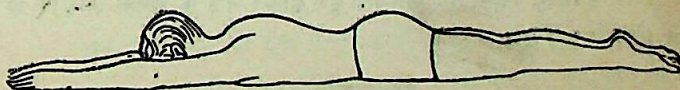
उदरशयनासन (२)

इस आसन से शारीरिक निर्बलता दूर होकर अत्यन्त शक्ति बढ़ती है । दृष्टि क्षीणता में भी इससे बहुत लाभ होता है ।

पद्मासन

यह आसन भी नेत्र रोगों में बहुत हितकर सिद्ध हुआ है। प्रातःकाल इसे लगा कर नेत्रों की दृष्टि को किसी बिन्दु पर स्थिर करें और श्वास खींच कर तब तक कुम्भक करें, जब तक कि किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव न होने लगे। इसके पश्चात् प्रश्वास को बाहर निकाल दें। यदि नेत्र में दर्द हो तो जिस नेत्र में अधिक हो उसी ओर के नासापुट द्वारा श्वास खींच कर दूसरे नासापुट द्वारा निकालना चाहिए। इस प्रयोग से दर्द में शीघ्र लाभ होता है। कुम्भक क्रिया की विधि पर आगे प्रकाश डाला जायगा, यहां पद्मासन की विधि लिखी जाती है।
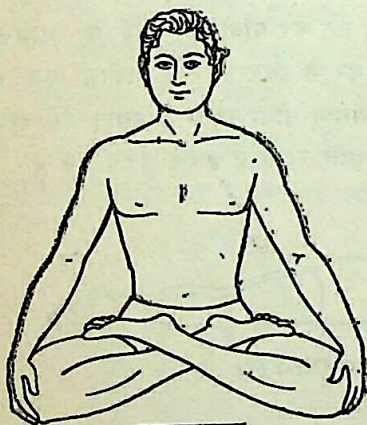
पद्मासन

दोनों जांघों पर दोनों पांवों को व्युत्क्रम से रखें अर्थात् बांयी जाँघ पर दाँया पांव और दांयी जाँघ पर बाँया पाँव रखें और दोनों हाथोंको घुटनोंपर रखकर सीधे बैठ जांय। इसमें शरीर को सीधा और समान तथा चित्त को शान्त एवं विकार रहित रखना चाहिए।

इससे श्वासन किया की असमता दूर होकर नेत्र के अनेक विकार में लाभ होने लगता है।

सिंहासन

यह आसन दो प्रकार से किया जाता है। पहिले प्रकार में दोनों घुटनों को झुका कर धरती पर टिकाना होता है तथा दोनों हाथ भी

जांघों के निकट रख लिये जाते हैं। जीभ को बाहर की ओर लम्बी निकाल लेते हैं। देखें चित्र न० १

दूसरे प्रकार में दोनों पाँवों को नितम्बों के इधर-उधर रख कर शिर को पीछे कीं ओर झुका लेते और जीभ को बाहर निकार लेते हैं। देखें चित्र नं० २
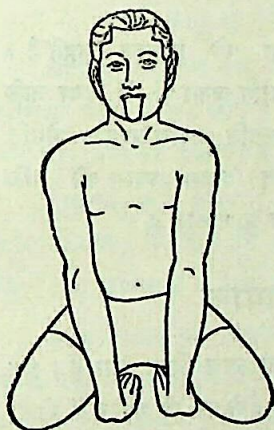
सिंहासन (१)

सिंहासन (२)

इस आसन के अभ्यास से हृदय की दुर्बलता दूर हो जाती है। उदर की स्थूलता कम होती और कण्ठ स्वर में मिठास आ जाता है। नेत्र-ज्योति तीव्र करने में भी इसका महत्वपूर्ण उपयोग समझना चाहिए।

नेत्र रक्षा में प्राणायास का प्रयोग

प्राणायाम योग की एक प्रमुख प्रक्रिया है। इसके अभ्यास से सभी रोग दूर हो सकते हैं। नेत्र-रोगों को दूर करने में भी इसका अभ्यास बहुत लाभदायक रहता है।

प्र.णायाम के तीन प्रक.र हैं — पूरक, कुम्भक, और रेचक बाहर से

वायु का खींचना पूरक, भीतर रोकना कुम्भक और खींचे हुये वायु को बाहर निकाल देना रेचक कहलाता है।

सामान्यतः पूरक क्रिया बांयी नासिका से और रेचक क्रिया दाँयी नासिका से की जाती है। कुछ प्राणायामों में इसके विपरीत भी करते हैं। कुछ योगाभ्यासीजन दोनों नासिकाओं से वायु खींचते और दोनों से ही निकाल देते हैं।

कुछ विद्वान् पूरक को श्वास और रेचक को प्रश्वास कहते हैं। श्वास-प्रश्वास की क्रियाओं का अभ्यास पाश्चात्य जगत में भी किया जाने लगा है। महर्षि पतंजलि के अनुसार 'तस्मिन्सति श्वास-प्रश्वास योर्गति विच्छेदः प्राणायामः' (यो. द. २१४९) अर्थात् 'श्वास-प्रश्वास की गति का विच्छेद होना अथवा गति को रोकना ही प्राणायाम है।'

नाड़ी शोधन प्राणायाम

शरीर में छोटी-बड़ी अगणित नाड़ियों का जाल बिछा हुआ है। इन नाड़ियों के मार्गों में किसी प्रकार मल संचित होने पर ही शरीर में रोगों की उत्पत्ति होती है। यदि वे मार्ग खुले रहें तो कभी किसी रोग के उत्पन्न होने की आशंका ही न रहे।

यह प्राणायाम क्रिया अवरुद्ध नाड़ियों को खोल कर नियमित स्राव के योग्य बनाती है। यदि धैर्य पूर्वक अभ्यास करते रहें तो सभी नाड़ियों का शोधन सामुचित रूप से हो जाता है। इसकी विधि इस प्रकार है।

बाँयी नासिका से श्वास खींचें और दांयी नासिका से बाहर निकाल दें। फिर दांयी नासिका से श्वास खींच कर बांयी से निकालें। इस क्रिया को शीघ्रता पूर्वक क्रमानुसार करना चाहिए। प्रारम्भ में एक मिनट ही अभ्यास करना पर्याप्त है, बाद में धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाना चाहिये।

भस्त्रिका कुम्भक या भस्त्रिका प्राणायाम

यह कुम्भक योग में प्रमुख रूप से अभ्यास योग्य माना जाता है। इसका महत्व भारतीय योगी ही नहीं, पाश्चात्य विशेषज्ञ स्वीकार करने लगे हैं। इसकी विधि इस प्रकार है–

भस्त्रेव लोहकाराणाँ सम्भ्रमेत्तु यथाक्रमम्।
ततो वायु च नासाभ्यां उभाभ्यांचालयेच्छनैः ॥

अर्थात्—बाहर से वायु को लोहार की धोंकनी के समान बार-बार खींचकर उदर में भरे और कुम्भक करे। फिर उस वायु को उदर में धीरे-धीरे चलाकर दोनों नासा छिद्रों के द्वारा बाहर निकाल दें।

उक्त निर्देश के अनुसार बाहरी वायु को दोनों नासा छिद्रों से खींचें और उदर तक लेजाकर उसे दोनों नासा-छिद्रों से बाहर निकाल दें। यह क्रिया अधिक से अधिक बीस बार तक करने का विधान है।

अनेक विद्वान् इस प्राणायाम को अधिक सरल बनाने के उद्देश्य से वाह्य वायु को खींचने और निकालने का अभ्यास करना ही पर्याप्त समझते हैं। उनके मत में विश्वास को खींचने निकालने की क्रिया जल्दी-जल्दी की जानी चाहिए, उस प्रकार जैसे कि लोहार की धोंकनी चलती है।

परन्तु यह क्रिया अभ्यास दृढ़ होनेने पर सिद्ध होती है। इसलिए इसकी क्रिया में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। बहुत जल्दी-जल्दी श्वास के खींचने-निकालने से नासिका की भीतरी दीवारें छिल सकती हैं और उनसे खून निकल सकता है।

इस प्राणायाम क्रिया को पद्मांसन लगाकर करना अधिक हितकर रहता है। इसमें शिर, ग्रीवा और समूचा शरीर ही सीधा रखना चाहिये जहाँ तक सम्भव हो चित्त को चञ्चलता-रहित और शान्त बनाये रहें। यह प्राणायाम नेत्र रोगों को दूर करने में बहुत उपयोगी है।

शीत्कारी कुम्भक या प्राणायाम

इसमें ऊपर-नीचे के दोनों ओष्ठों के बीच में जीभ लगा कर मुख के द्वारा श्वास खींचकर जितनी देर तक श्वास को सरलता से रोक सकें रोके रहें और बाद में दोनों नासा-रन्ध्रों से बाहर निकाल दें। इस क्रिया में श्वास खींचने के समय शी-शी जैसी ध्वनि निकलती है, इसीलिये इसे शीत्कारी या शीत्का कहते हैं। इसके निरन्तर अभ्यास करते रहने से बल और वर्ण में वृद्धि होती तथा नेत्र रोग नष्ट होते हैं।

उज्जायी कुम्भक या प्राणायाम

इसमें दोनों नासा-रन्ध्रों से वायु को खींच कर पहिले मुख में रोकते और मुख से कण्ठ में लेजाकर रोक लेते हैं, उसके बाद हृदय में लेजाकर धारण करते हैं। फिर हृदय से कण्ठ में और कण्ठ से मुख में पहुंचा कर अन्त में नासा-छिद्रों से ही बाहर निकाल देते हैं।

इसकी सरल विधि यह है कि नासा-रन्ध्रों से श्वास खींचकर जितनी देर तक भीतर रोक सकें, रोकें और फिर बाहर निकालें। श्वास रोकने के समय में यह प्रयत्न करें कि वह पहिले मुख में, फिर कण्ठ में और फिर हृदय में जा पहुंचे। यह क्रिया अभ्यास से साध्य हो सकती है।

शीतली कुम्भक या प्राणायाम

इसमें मुख के मार्ग से बाह्य वायु खींचकर भीतर भरी जाती है। दोनों ओष्ठों को आगे की ओर इस प्रकार से करें कि जैसे कौए की चोंच बाहर की ओर निकली रहती है। ओष्ठों के बीच में जिह्वा को फंसा कर बाहर से वायु को खींचे और उदर तक लेजाकर भर लें और वहाँ एक क्षण भर रोककर दोनों नासा-छिद्रों से बाहर निकालें।

सामान्यतः इस कुम्भक में जिह्वा के द्वारा वायु खींचकर कुम्भक किया जाता और फिर नासिका द्वारा वायु को बाहर निकाल दिया जाता

है। यह प्राणायाम बहुत सरल तथा नेत्र-विकार और उदर-विकार आदि को दूर करने में उपयोगी है।

अनलोद्दीपक प्राणायाम

किसी भी आसन से बैठ कर इसे कर सकते हैं। बांये नासा पुट से श्वास खींचकर पेट तक भर लें और इतनी देर तक कुम्भक करें, जितनी देर में कुम्भक मण्डल लाल हो उठे। उसके बाद दांये नासा पुट से वायु को धीरे-धीरे निकाल दें। इसके अभ्यास से शीत काल में भी पसीना बहने लगता है, जिससे आन्तरिक मल का शोधन होकर शरीर निरोग हो जाता है। इसलिए नेत्र रोगों में भी उपयोगी है। यदि इसके करने में अधिक घबराहट या मूर्छा आदि का अनुभव हो तो उसी समय वायु को धीरे-धीरे निकाल देना चाहिए।

दीर्घश्वासी प्राणायाम

पद्मासन से बैठकर दोनों नासा-रन्ध्रों से वेग पूर्वक श्वास खींचें और फिर लम्बा नि.श्वास. निकालते हुए रेचक करें। इस क्रिया में कुम्भक नहीं किया जाता। इसके अभ्यास से वक्षस्थल, फुफ्फुस, तथा अमाशय आदि स्वच्छ होकर पाचन शक्ति बढ़ जाती है और नेत्र रोग में भी लाभ होता है। यह प्राणायाम बल और स्फुर्ति देने वाला भी है।

लघुश्वासी प्राणायाम

इसमें दोनों नासा-पुटों से धीरे-धीरे हल्का श्वास खींचते हैं तथा बिना कुम्भक किये उसे धीरे-धीरे ही निकाल देते हैं। यह क्रिया भी फुफ्फुसों और स्नायुयों को बल प्रदान करती तथा रक्त के शोधन में सहायक होती है। नेत्रों के अनेक विकारों को दूर करने में भी उपयोगी है।

सर्वद्वारावरोध प्राणायाम

इस प्राणायाम में नासिका द्वारा बाहर से वायु खींच कर उदर तक

भरनी होती है और उसके साथ ही कुम्भक करना होता है। तदुपरान्त दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नासिका और मुख को दोनों अँगूठों, दोनों तर्जनियों, दोनों माध्यमाओं और दोनों अनामिका-कनिष्ठिकाओं से क्रमशः बन्द करके भौंहों के मध्य लगाये हुए कुम्भक करने का विधान है। जब थकान का अनुभव हो, तब नासिका से मध्यमाओं को हटाकर धीरे-धीरे वायु का रेचन करें। इससे नेत्र रोग, कान के रोग तथा नासिका और मुख के रोग दूर हो जाते हैं।

चतुर्मुखी प्राणायाम

किसी सरल आसन से बैठकर मुख को बाँये कन्धे की ओर मोड़ें और दोनों नासा पुटों से जल्दी-जल्दी रेचक-पूरक करें। फिर दाँये कन्धे की ओर मुख करके पुनः उक्त प्रकार रेचक-पूरक करना चाहिए। तदुपरान्त दृष्टि को भौंहों के मध्य लगाकर यही क्रिया करें और फिर अन्त में दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर कर उसी प्रकार रेचक-पूरक करें। इससे नेत्र-विकार नष्ट होते हैं।

सूर्यात्मक व्यायाम या पामिंग

चक्षु का अधिदेवता सूर्य

भारतीय आचार्यों ने सूर्य को नेत्रों का देवता माना है। वेद, पुराण, उपनिषद् आदि सभी शास्त्र एवं ग्रन्थ पुकार-पुकार कर सूर्य की चक्षु-शक्ति का बखान कर रहे हैं। चाक्षुषोपनिषत् ने सूर्य को चक्षु का अभि-

मानी देवता मानते हुए कहा है—'चक्षुः तेजः स्थिरो भव, मां पाहि-पाहि त्वरितं चक्षुरोगान् शमय शमय' अर्थात् 'हे सूर्य ! आप चक्षु में चक्षु के तेज रूप से स्थिर हों और मेरी रक्षा करे, रक्षा करें तथा नेत्र रोगों को शीघ्र शान्त करो।'

सूर्योपनिषत् में भी ऐसा ही कहा है—'चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पवतः, चक्षुर्धाता दधातु नः' अर्थात् 'सविता देव हमारे नेत्र हैं, वे सबको धारण करने वाले सूर्य हमारे नेत्रों को देखने की शक्ति प्रदान करने वाले हों।'

उक्त प्रमाण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि नेत्रों के लिए सूर्य से ही दर्शन शक्ति प्राप्त होती है। यही कारण है कि हमारे आचार्यों ने प्रातः सायंकालीन सन्ध्याओं के लिए सूर्याभिमुख होकर बैठने का विधान किया तथा अनेकानेक साधक प्रातः स्नान के पश्चात् सूर्य की ओर मुख करके ही अर्घ्य देते हैं।

सूर्य के प्रकाश का दर्शनशक्ति पर प्रभाव

बहुतों की मान्यता है कि सूर्य के प्रकाश का नेत्रों की दर्शन क्रिया पर अत्यन्त प्रभाव पड़ता है। उस प्रकाश के बिना नेत्रों का स्वस्थ रहना ही असम्भव है। क्योंकि सूर्य की किरणों में नेत्रों को ज्योति देने और उनके रोगों को हर लेने की पूर्ण शक्ति है। इस प्रकार नेत्रों के लिए सूर्य शक्ति से बढ़कर अन्य कोई शक्ति नहीं मानी जाती। क्योंकि नेत्र रोगों में सूर्य व्यायाम से कभी-कभी तो जादू के समान प्रभाव दिखाई देता है। नेत्र-शूल एवं चोंदा लगने जैसे उपद्रवों में तो एक-दो बार का व्यायाम ही पर्याप्त होता है।

कभी-कभी औषधि-प्रयोग तो अनुकूल न रहने पर हानिकारक भी हो जाता है। परन्तु, सूर्य-व्यायाम से कभी कोई हानि नहीं हो सकती उससे नेत्रों में एक प्रकार की ऐसी शक्ति प्राप्त होने लगती है, जिसके प्रभाव से

नेत्रों के दोष दूर होने लगते हैं और वे शीघ्र ही रोग-रहित होजाते हैं। यदि ज्योति क्षीण होगई हो तो वह भी तीव्र होने लगती है।

सूर्यात्मक व्यायाम आबाल वृद्ध, स्त्री या पुरुष, सभी के लिए उपयोगी है। छोटे शिशु भी इससे लाभान्वित किये जा सकते हैं। वृद्धावस्था में क्षीण होती हुई नेत्रशक्ति को अधिक न गिरने देने में भी उसकी सहायता ली जा सकती है।

सूर्यात्मक व्यायाम की सरल विधि

सूर्य की ओर मुख करके शान्तिपूर्वक धरती पर कुछ बिछा कर या कुर्सी पर बैठें। यह क्रिया उस समय करनी चाहिए, जबकि सूर्य में तेजी न हो। इसलिए इस कार्य के उद्देश्य से प्रातःकाल और सायंकाल का समय उपयुक्त माना जाता है। प्रातःकाल तो सूर्योदय के तुरन्त बाद ही सूर्यात्मक व्यायाम की क्रिया करनी चाहिए। क्योंकि उस समय सूर्य की किरणों में अल्ट्रा वायलेट किरणों का समावेश रहता है। सामान्यतः जब भी सूर्य में तेजी न हो, तब किसी भी समय इसे कर सकते हैं।

सूर्य के सामने ८-१० मिनट तक बैठना पर्याप्त होगा। उस समय अपने शरीर को उस प्रकार हिलावें, जैसे कि सपेरे की बीन के आगे साँप अपने फन को हिलाता है अथवा दीवाल घड़ी का पेंडुलम घूमता है। उस समय खोपड़ी को धूप से बचाने के लिए शिर को रूमाल से ढक सकते हैं।

यह व्यायाम बिजली के प्रकाश या आग के प्रकाश के सामने बैठकर भी कर सकते हैं। यदि सूर्य न निकले तो २०० से ५००वाट तक का बल्व जलाकर उक्त प्रकार से हिलने की क्रिया की जा सकती है।

खुले नेत्रों से सूर्यात्मक व्यायाम एवं सूर्यान्धता

यदि नेत्र स्वस्थ हों तो इस व्यायाम को खुले नेत्रों से भी कर सकते हैं। यदि बन्द नेत्रों से सूर्यात्मक व्यायाम करने में अभ्यस्त हो चुके हों, तो भी खुले नेत्रों से किया जा सकता है। जिन लोगों को चौंदा न लगता हो, उनके लिए भी खुले नेत्रों से व्यायाम करना हितकर हो सकता है।

परन्तु, कुछ अनुभवी पुरुषों के मत में खुले नेत्रों से व्यायाम करना किसी-किसी के लिए तो अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होता है विशेष कर उन व्यक्तियों को, जिनकी दृष्टि कमजोर हो, अथवा जो लोग किसी भी नेत्र-रोग से पीड़ित हों, उन्हें खुले नेत्रों से कभी भी यह व्यायाम नहीं करना चाहिए ।

खुले नेत्रों से सूर्य की ओर टकटकी लगाकर देखते रहने से सूर्यान्धता की उत्पत्ति हो सकती है, इसलिए जो व्यक्ति उसका अभ्यास करना चाहते ही हों, उन्हें ३०-३० सैकिन्ड के अन्तर पर नेत्र झपकाते रहना चाहिए ।

खुले नेत्रों वाले सूर्य-व्यायाम में नेत्रों में शहद लगाकर एकाध मिनट तक सूर्य की ओर देखना और उतनी ही देर नेत्रों को बन्द करके पुनः खोल कर उतनी ही देर देखना उचित होता है । सामान्यतः जल्दी-जल्दी पलक झपकाने और खोलने की क्रिया करते रहने से सूर्य का प्रकाश प्रतिकूल नहीं हो पाता ।

अथवा सर्प के फन या घड़ी के पैण्डुलम के समान हिलने की क्रिया करने से खुले नेत्रों से प्रकाश ग्रहण करने की प्रतिकूलता प्रभावित नहीं कर पाती । उस समय सामने जो वृक्ष, मकान आदि वस्तुएँ होंगी, वे सब विपरीत दिशा में चलती हुई प्रतीत होंगी । यदि आप बाँयी ओर हिलेंगे तो वस्तुएं दाँयी ओर चलेंगी और दाँयी ओर हिलेंगे तो वस्तुएं बांयी ओर चलेंगी । इस प्रकार की क्रिया में सामने का दृश्य भी दिखाई देता रहेगा और सूर्य के भी दर्शन होते रहेंगे ।

जो लोग खुले नेत्रों से सूर्यात्मक व्यायाम करने में अपने को उपयुक्त समझते हों और वे उसे करना चाहें तो शान्तिपूर्वक बैठें और मन को पूर्णरूप से विकार रहित बना लेने का प्रयत्न करें । तब आकाश की ओर दृष्टि करके सूर्य के एक मीटर दूर के आकाश को देखें । सूर्य पर

सीधी दृष्टि कदापि न डालें। अन्यथा हानि की बहुत कुछ सम्भावना रहती है।

यदि यह व्यायाम करना हो तो केवल प्रातः काल, उगते हुए सूर्य के पूरी तरह निकल आने पर तथा सायंकाल में सूर्यास्त से पहिले ही करना चाहिए. परन्तु सूर्य में लाली हो उस समय न करें। सूर्य की तीव्रता के समय भी नहीं करना चाहिए।

ध्यान रहे कि इस प्रकार के सूर्यात्मक व्यायाम की क्रिया के पश्चात् यदि नेत्रों में धुँधलापन का अनुभव हो तो समझ लें कि या तो उस प्रकार का व्यायाम आपके अनुकूल नहीं है अथवा उसकी क्रिया में किसी प्रकार की त्रुटि रह गई है। ऐसा होने पर नेत्रों में ठण्डे पानी के छींटे दिये जाँय और फिर उन्हें ठण्डे पानी से ही धोने के पश्चात् पामिंग की क्रिया की जाय।

नेत्रों में छींटे मारने और धोने की क्रिया

एक पात्र में ताजा ठण्डा पानी लेकर दाँये हाथ की अंगुलियों से आँखों में छींटे दें। यह क्रिया २-३ मिनट तक करनी चाहिए और साथ ही नत्रों को बन्द करते-खोलते रहना चाहिए दाँये हाथ की अंजुली द्वारा नेत्रों पर पानी के छपके मारना भी उपयोगी है। यदि इस कार्य में त्रिफला का पानी प्रयोग में लाया जाय तो बहुत लाभदायक होता है।

इसके लिए त्रिफला का पानी बनाने की विधि यह है कि रात्रि के समय त्रिफला को कूट कर पानी में भिगो दें और प्रातःकाल मलकर छान कर आँखों में छींटे देने, छपके मारने या धोने के काम में लायें। यह पानी स्वतः ही एक औषधि का कार्य पूरा करता है और अकेला भी नेत्र रोगों को दूर करने में उपयोगी है।

नेत्र धोने के कार्य में उसी उद्देश्य से बने हुए प्याले (आई कप) को लेकर एक नेत्र पर इस प्रकार से लगावें कि प्याले का ऊपरी किनारा

ऊपर के पलक के पास रहे और नीचे का किनारा निचले पलक को स्पर्श करे। तब प्याले में पलक झपका कर नेत्र को प्राय: २-३ मिनट तक धोवें। इसी प्रकार दूसरे नेत्र को धोने के लिए पहिले पानी को फेंककर प्याले को धोलें और उसमें अन्य स्वच्छ पानी भर कर धोने की क्रिया करें।

ध्यान रहे कि आंख धोने की यह क्रिया करने में प्याले को आंख पर जोर से न दबाया जाय और न शिर को ही ऊँचा उठाया जाय। अभिप्राय यह है कि ऐसी किसी भी क्रिया में आँखों पर किसी प्रकार का आघात नहीं लगना चाहिए।

नेत्र धोने की एक यह क्रिया बड़ी सरल है कि एक तामचीनी का बड़ा प्याला, छोटी बाल्टी अथवा भगौना लेकर उसमें स्वच्छ ताजा पानी भरें और मुख को उसके पानी में डुबोकर पानी के भीतर ही पलक झपकाते रहें। बीच-बीच में श्वास लेने के लिए मुख को बाहर निकालें और पुन: डुबो लें। इस प्रकार यह क्रिया १०-१२ बार करनी चाहिए। यह क्रिया नेत्र-दृष्टि को तीव्र करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है।

पामिंग अथवा ध्यान

नेत्र रोगों को दूर करने में पामिंग बहुत ही प्रभावशाली प्रक्रिया है। अनेकों पाश्चात्य विशेषज्ञ पामिंग की बड़ी प्रशंसा करते हैं। यह क्रिया योग शास्त्रों में वर्णित ध्यान का ही एक रूप है। हमारे शास्त्रों ने ध्यान का अत्यन्त महत्व स्वीकार किया है, जिसके द्वारा मस्तिष्क तथा नेत्रादि की पूर्ण स्वस्थता प्राप्त होती है।

परन्तु, ध्यान की रोग-निवारक अवस्था तभी उत्पन्न हो सकती है, जबकि चित्त में किसी भी प्रकार का विकार न रहे। यदि चित्त में कोई भी विकार शेष रहता है तो उसकी पूर्णता असम्भव है और यदि पूर्णता नहीं तो उसका रोग-निवारक प्रभाव भी नहीं हो सकता।

ध्यान की रोग-निवारक शक्ति को भारतवासी ही नहीं, पाश्चात्य विशेषज्ञ भी स्वीकार करते हैं। हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों के नेत्रों से दिव्य ज्योति निकलने की चर्चा सुनी जाती है, वह सब ध्यान की महिमा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। वे ऋषि-मुनि ध्यान के द्वारा ही एक स्थान पर बैठे रहकर अपने से हजारों-लाखों कोसों पर घटने वाली घटनाओं को देखने में समर्थ थे। उनके त्रिकालज्ञ कहलाने का रहस्य भी ध्यान ही था, जिसके बल पर वे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के विषय में सब कुछ सत्य-सत्य बता देते थे।

ध्यान की नेत्र-रोगों को निवारण करने वाली विधि को पामिंग कहते हैं। यह क्रिया नेत्रों को निरोग करने में बहुत उपयोगी समझी जाती है। इसकी विधि निम्न प्रकार है—

पामिंग की विधि

आँखों को मूँद कर उन्हें दोनों हथेलियों के द्वारा ढक लें और किसी काले रंग की वस्तु का ध्यान करे। अथवा अपनी किसी अधिक प्रिय वस्तु के ध्यान से भी इसकी सम्पन्नता हो सकती है। प्रिय वस्तुओं में वे सभी सम्मिलित हैं, जिनसे नित्य प्रति कार्य पड़ता हो जैसे कि कोई पुरुष अपनी पत्नी, बालक अथवा मित्र को अधिक प्रिय मानता हो तो उसका ध्यान कर सकता है। कोई महिला अपने प्रिय पति या शिशु आदि का ध्यान कर सकती है। उसी प्रकार बालक अपने खिलौनों का और भक्त अपने भगवान् की प्रतिमा का ध्यान करता हुआ पामिंग की क्रिया का अभ्यास कर सकता है।

पामिंग का अभ्यास करते समय सूर्य की ओर मुख करके सीधे बैठें। आराम के लिए आवश्यक हो तो कोहनियों के नीचे तकिया रखा जा सकता हैं अथवा हाथों को किसी मेज पर रखे हुए भी क्रिया कर सकते हैं।

उस समय यह न भूलना चाहिए कि पामिंग के समय दोनों हथेलियों को इस प्रकार से ढकी हुई रखें कि आँखों में प्रकाश का किंचित् भी प्रवेश न हो सके। ऐसा लगाना चाहिए, जैसे कि किसी अँधेरे कमरे में बैठे हुए हों। इसके विपरीत, यदि, आखों में आंशिक रूप से भी प्रकाश पहुँच जाये तो वह हानिकारक हो सकता है।

नेत्रों को हितकर त्राटक विधि

दृष्टि में तीव्रता और स्थिरता लाने के लिए भारत में प्राचीन काल से त्राटक योग की विधि काम में लायी जाती रही है। यह विधि योग विद्या के साथ-साथ भारत से तिब्बत में भी जा पहुंची, जहाँ के लामा लोग इन्हीं विद्याओं के द्वारा गुह्य आत्म विद्या तक को जानने लगे। भारतवासी अपनी ही विद्याओं के प्रति उदासीन रहकर उन्हें भूलने लगे और अन्य देशवासी उनसे अपेक्षित लाभ उठाने लगे। आज भी अनेकानेक विदेशी उन विद्याओं में पूर्ण पारंगत समझे जाते हैं।

इस विषय में डॉ० अलेक्जेंडर केनन के अनुभवों की थोड़ी चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा। वे हाँगकाँग के निवासी थे और इंगलैण्ड की सरकार ने उन्हें 'नाइट' की उपाधि दी थी। उन्होंने आत्म तत्व की खोज में चीन, तिब्बत, भारत एवं अन्यान्य सुदूर देशों की यात्रा करके महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त किये थे।

एक बार वे तिब्बत के एक लामा के निमन्त्रण पर सपरिवार वहाँ पहुँचे। लामा के मठ के निकट एक पचास गज चौड़ी खाई थी, जिसे पार किये बिना मठ में पहुँचना सम्भव नहीं था।

उस खाई के समीप ही एक लामा खड़ा था, जिसके परमर्श पर उन्होंने स्त्री-बच्चों को निकटस्थ गाँव में ठहरा दिया और स्वयं उसके साथ चलने को तत्पर हुए तो उस लामा ने कहा कि 'आप मेरे बताये अनुसार प्राणायाम और शरीर-शैथिल्य के साधनों को करिये, जिससे कि

ध्यान की रोग-निवारक शक्ति को भारतवासी ही नहीं, पाश्चात्य विशेषज्ञ भी स्वीकार करते हैं। हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों के नेत्रों से दिव्य ज्योति निकलने की चर्चा सुनी जाती है, वह सब ध्यान की महिमा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। वे ऋषि-मुनि ध्यान के द्वारा ही एक स्थान पर बैठे रहकर अपने से हजारों-लाखों कोसों पर घटने वाली घटनाओं को देखने में समर्थ थे। उनके त्रिकालज्ञ कहलाने का रहस्य भी ध्यान ही था, जिसके बल पर वे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के विषय में सब कुछ सत्य-सत्य बता देते थे।

ध्यान की नेत्र-रोगों को निवारण करने वाली विधि को पामिंग कहते हैं। यह क्रिया नेत्रों को निरोग करने में बहुत उपयोगी समझी जाती है। इसकी विधि निम्न प्रकार है—

पामिंग की विधि

आंखों को मूंद कर उन्हें दोनों हथेलियों के द्वारा ढक लें और किसी काले रंग की वस्तु का ध्यान करे। अथवा अपनी किसी अधिक प्रिय वस्तु के ध्यान से भी इसकी सम्पन्नता हो सकती है। प्रिय वस्तुओं में वे सभी सम्मिलित हैं, जिनसे नित्य प्रति कार्य पड़ता हो जैसे कि कोई पुरुष अपनी पत्नी, बालक अथवा मित्र को अधिक प्रिय मानता हो तो उसका ध्यान कर सकता है। कोई महिला अपने प्रिय पति या शिशु आदि का ध्यान कर सकती है। उसी प्रकार बालक अपने खिलौनों का और भक्त अपने भगवान् की प्रतिमा का ध्यान करता हुआ पामिंग की क्रिया का अभ्यास कर सकता है।

पामिंग का अभ्यास करते समय सूर्य की ओर मुख करके सीधे बैठें। आराम के लिए आवश्यक हो तो कोहनियों के नीचे तकिया रखा जा सकता हैं अथवा हाथों को किसी मेज पर रखे हुए भी क्रिया कर सकते हैं।

उस समय यह न भूलना चाहिए कि पामिंग के समय दोनों हथेलियों को इस प्रकार से ढकी हुई रखें कि आँखों में प्रकाश का किंचित् भी प्रवेश न हो सके। ऐसा लगाना चाहिए, जैसे कि किसी अँधेरे कमरे में बैठे हुए हों। इसके विपरीत, यदि, आखों में आंशिक रूप से भी प्रकाश पहुँच जाये तो वह हानिकारक हो सकता है।

नेत्रों को हितकर त्राटक विधि

दृष्टि में तीव्रता और स्थिरता लाने के लिए भारत में प्राचीन काल से त्राटक योग की विधि काम में लायी जाती रही है। यह विधि योग विद्या के साथ-साथ भारत से तिब्बत में भी जा पहुंची, जहाँ के लामा लोग इन्हीं विद्याओं के द्वारा गुह्य आत्म विद्या तक को जानने लगे। भारतवासी अपनी ही विद्याओं के प्रति उदासीन रहकर उन्हें भूलने लगे और अन्य देशवासी उनसे अपेक्षित लाभ उठाने लगे। आज भी अनेकानेक विदेशी उन विद्याओं में पूर्ण पारंगत समझे जाते हैं।

इस विषय में डॉ० अलेक्जेंडर केनन के अनुभवों की थोड़ी चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा। वे हाँगकाँग के निवासी थे और इंगलैण्ड की सरकार ने उन्हें 'नाइट' की उपाधि दी थी। उन्होंने आत्म तत्व की खोज में चीन, तिब्बत, भारत एवं अन्यान्य सुदूर देशों की यात्रा करके महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त किये थे।

एक बार वे तिब्बत के एक लामा के निमन्त्रण पर सपरिवार वहाँ पहुँचे। लामा के मठ के निकट एक पचास गज चौड़ी खाई थी, जिसे पार किये बिना मठ में पहुँचना सम्भव नहीं था।

उस खाई के समीप ही एक लामा खड़ा था, जिसके परमर्श पर उन्होंने स्त्री-बच्चों को निकटस्थ गाँव में ठहरा दिया और स्वयं उसके साथ चलने को तत्पर हुए तो उस लामा ने कहा कि 'आप मेरे बताये अनुसार प्राणायाम और शरीर-शैथिल्य के साधनों को करिये, जिससे कि

आपका शरीर रुई के समान हल्का हो जाय और आप मेरे साथ उड़ते हुए खाई पार कर लें।

यह कह कर उसने उन्हें वे साधन बतलाये जो नेत्र बन्द करके करने पड़े और जब उन्होंने अपने नेत्र खोले तब यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य में भर गये कि खाई पार हो चुकी है। मठ में पहुंचने पर मठाधीश लामा ने उनका स्वागत किया। श्री केनन ने अपनी 'इनविजिबिल इन्फ्लूएन्स' नामक पुस्तक में लिखा है कि 'उस लामा के शरीर से बाहर तीन फिट के घेरे में नीले रङ्ग का एक अद्भुत तेज दिखाई देता था।

एक आश्चर्यजनक घटना

श्रीकेनन ने वहाँ रह कर एक आश्चर्य जनक घटना देखी। उनके समक्ष कफन में लपेटा हुआ एक मृत शरीर लाया गया, जिसकी परीक्षा करके उन्होंने बताया कि इसकी मृत्यु को २४ घन्टे भी अधिक समय हो गया होगा। परन्तु, उसी समय लामा ने एक मन्त्र-सा गुनगुना कर शव पर दृष्टि गढ़ाते हुए कहा—'उठो भाई! बहुत देर से पड़े सो रहे हो।'

लामा का यह कहना था कि मृतक ने नेत्र खोले, चारों ओर दृष्टि घुमाई और उठ कर श्री केनन के पास गया तथा अभिवादन करके खड़ा हो गया। उन्हें यह देखकर और भी आश्चर्य हुआ कि यह वही लामा था जो उन्हें योग-साधनायें करा कर खाई के इस पार ले आया था।

तभी लामा ने उन्हें बताया कि इस मनुष्य को मरे हुए सात वर्ष हो गए और अभी सैकड़ों वर्ष तक इसे इसी प्रकार रखा जा सकता है। लामा उनके मन की बात को भी जान लेता था और उनके कुछ कहने से पहिले ही उनकी मन की शङ्का का उत्तर दे देता था। यह उसत्राटक विद्या का ही प्रभाव था, जो दूसरों के मन की बात बताने या चाहे जिसे मूर्छित कर देने में भी सहायक होती थी।

श्री केनन ने लामा से त्राटक विद्या को सीखा। उन्होंने उसे ध्यान साधना का ही एक अङ्ग मानते हुए लिखा है कि साधक लामा सुर्योदय काल मे एक घण्टे पहिले इसका अभ्यास कर सूर्योदय होने पर समाप्तकर देते हैं। श्वेत पाषाण या स्फटिक पाषाण अथवा शालग्राम को नेत्रों की सीध की ऊँचाई पर अपने से दो फिट की दूरी पर रखते और जहां तक टकटकी लगा कर देखना सम्भव होता, वहां तक देखते रहते। जब तक नेत्र थक नही जाते, तब तक यह अभ्यास निरन्तर किया जाता है।

जब पाषाण पर दृष्टि की स्थिरता सिद्ध हो जाती है। तब घृत का दीपक जला कर उसकी लौ पर दृष्टि को स्थिर करने का अभ्यास करते हैं। जब दीपक की लौ पर अभ्यास सिद्ध हो जाता है, तब ठोड़ी को कण्ठ कूप में लगा कर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर करने का अभ्यास किया जाता है। इतना अभ्यास होने पर दूर त्राटक के अभ्यास द्वारा विद्या की अन्तिम सिद्ध प्राप्त की जाती है, जो कि इस प्रकार है।

दूर त्राटक की सिद्धि का अभ्यास

इसमें दूरस्थ वस्तुओं पर दृष्टि स्थिर करने आ अभ्यास किया जाता है। गोल गुम्बज वाले मन्दिर दूर स्थान पर लगे हुए वृक्ष आदि, गगनस्थ तारे और चन्द्रमा आदि पर दृष्टि स्थिर करना भी इसी में सम्मिलित है। उसके पश्चात् तीव्र ज्योति वाले माध्यमों पर दृष्टि स्थित करतेहैं और जब उन तीव्र तेज वाली ज्योतियों को देखने का अभ्यास दृढ़ हो जाता है, तब सूर्य को देखने का अभ्यास किया जा सकता है। परन्तु सूर्य को देखने का यह अभ्यास सावधानी से करना चाहिए। सीधे सूर्य पर दृष्टि न टिका कर सूर्य से एक मीटर की दूरी पर, आकाश में दृष्टि टिकानी चाहिये। वह भी इस प्रकार, जिससे कि सूर्य के प्रकाश का कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़ें। अन्यथा सूर्यान्धता का शिकार होना सम्भव होगा।

योग शास्त्र वर्णित ध्यान विन्दु साधना

योग शास्त्रों में ध्यान विन्दु साधना का वर्णन मिलता है, उनमें

खुले नेत्रों से किसी मूर्ति, चित्र अथवा ज्योति का ध्यान किया जाता है। इसकी सिद्धि के रूप में आज्ञा चक्र रूपी तृतीय नेत्र खुल जाता है, जिसके द्वारा अनेकों अद्भुत सामर्थ्यों की प्राप्ति होती है। ध्यान की यह क्रिया दोनों भौंहों के मध्य में दृष्टि को स्थिर करने से भी सिद्ध हो जाती है। इस विषय में प्रसिद्ध योग ग्रन्थ 'घेरण्ड संहिता' का कथन में—

निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्म लक्ष्यं निरीक्षयेत्।
यावद् श्रूणि पतन्ति त्राटकं प्रोच्यते बुधैः॥
एवमभ्यासयोगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम्।
नेत्रदोषाविनश्यन्ति दिव्य दृष्टिः प्रजायते॥

अर्थात्—निमेष-उन्मेष को रोकने पर जब तक आंसू न गिरने लगें, तब तक किसी लक्ष्य की ओर टकटकी लगा कर देखने को ही विद्वज्जन त्राटक कहते हैं। इसके अभ्यास से शाम्भवी मुद्रा दृढ़ स्थिति होती है तथा नेत्र के दोषों का निवारण होकर दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार यह आवश्यक है कि साधक या रोगी का ध्यान किसी एक वस्तु पर केन्द्रित रहे। ध्येय वस्तु चाहे जो हो सकती है— कोई बालक, युवा स्त्री, तरुण पुरुष, कोई गहरे रङ्ग का चित्र अथवा कोई मूर्ति, कोई काँच की गोली आदि। यदि किसी बोर्ड पर कोई चित्र बना कर प्रयोग में लावें तो भी कार्य सिद्धि में सरलता रहेगी।

आगे शक्ति चक्रों के चित्र दिये जाते हैं। इनमें से किसी भी एक चित्र पर ध्यान केन्द्रित कर सकते। कोई भी चक्र ऐसे दो रङ्गों में बनाया जा चाहिए, जो कि ध्यान से देखने पर परस्पर घुलते-मिलते से दिखाई दें। यदि लाल नीले रङ्गों का प्रयोग किया जाय तो अधिक सुविधा रहेगी।

यह सभी मानते हैं कि नेत्रों में सब से अधिक आकर्षण शक्ति रहती है। यदि उस शक्ति को एक विन्दु पर केन्द्रित कर लें तो उसके प्रभाव में सहस्रों गुणा वृद्धि हो सकती है।

दृष्टि को एक विन्दु पर एकाग्र करने के तीन स्थान माने गये हैं— हृदय, नासाग्र और भौंहों का मध्य भाग। यदि किसी चित्र आदि पर अभ्यास करना होता है तो उसे नेत्रों से कुछ ऊपर की ओर डेढ़-दो फिट की दूरी पर रखना उचित है। यह इसलिए कि उसे देखने के लिए कुछ प्रयत्न करना पड़े। ऐसा करना दृष्टि की एकाग्रया उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होया है। यदि यह अभ्यास शक्ति चक्र के माध्यम से करें तो नेत्र-दोषों के निवारण में सरलता रहती और वशीकरण की शक्ति चढ़ती है।

शक्ति चक्र के विभिन्न प्रकार

शक्ति चक्र के अनेक प्रकार हैं, जिनमें भारतीय, अमरीकी, ग्रीक और सार्वभौमिक प्रकार अधिक प्रचलित हैं। उनका वर्णन यहाँ चित्र सहित किया जाता है-

भारतीय शक्ति चक्र के दो प्रकार

भारतीय शक्ति 'श्री' और 'ॐ' के भेद से दो प्रकार का है। भारत में यह दोनों ही बीजाक्षर माने जाते हैं। शक्ति चक्र से पृथक रहते हुए भी इनका प्रभाव किसी प्रकार कम नहीं होता। मन्त्रों के रूप में भी इनका भी इनका प्रयोग किया जाता है।

सार्वभौमिक आदि चक्र

सार्वभौमिक विन्दु चक्र भी भारत वर्ष की ही देन है। भारतीय योगी बिन्दु रूप में ज्योति का अथवा परमात्मा का ध्यान किया करते है। इस प्रकार दृष्टि स्थैर्य के अभ्यास से भी इच्छित लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

अमरिकन शक्ति चक्र और ग्रीक शक्ति चक्र का पाश्चात्य देशों में अत्यधिक प्रचलन है। वहां के सम्मोहन शास्त्री भी इसके अभ्यास से समुचित कार्य लेते हैं।

चक्रों के अभ्यास की विधि

इन चक्रों में से किसी का भी अभ्यास किसी स्वच्छ वायु के आवागमन एवं सामान्य प्रकाश से युक्त कमरे में बैठकर करना चाहिये। इनके अभ्यास में तीव्र प्रकाश उपयोगी नहीं होता। कमरे का वातावरण पूर्ण शान्त, एकाग्र एवं कोलाहल से रहित होना चाहिये।

चित्त को प्रसन्न, शान्त एवं विकार रहित रखें। उस समय आलस्य और थकावट के भाव नहीं रहने चाहिए। समय की कोई बाधा नही है, दिन या रात्रि में कभी भी अभ्यास करते हैं।

जिस शक्ति चक्र का अभ्यास करना हो, उसकी आकृति किसी कागज पर उतार लेनी चाहिए। धरती में बैठें तो आकृति को हाथ में थाम कर नेत्रों से डेढ़-दो फिट की दूरी पर रखें और यदि कुर्सी पर बैठें तो नेत्रों की सीध से कुछ ऊपर की ओर डेढ़-दो फीट की दूरी पर दीवार पर टाँग दें।

अभ्यास आरम्भ करने से पूर्व शरीर को ढीला छोड़ दें और ऐसा अनुभव करें, जैसे कि समुद्र पर तैर रहे हों और तब अपनी दृष्टि को शक्ति चक्र पर स्थिर करने का अभ्यास करें। उस समय चक्र को बिना पलक झपकाये ही देखते रहें। जब तक किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव न हो, तब तक इस अभ्यास को करें और फिर अभ्यास को समाप्त कर दें।

दूसरे दिन, प्रथम दिन की अपेक्षा कुछ अधिक समय तक अभ्यास करना चाहिए। तीसरे दिन उससे भी अधिक समय करें। इस प्रकार दो तीन सप्ताह तक नित्य थोड़ा-थोड़ा समय बढ़ाया जाय।। इसका अधिक अभ्यास करनें से चक्र की आकृति नीचे-ऊपर चलती हुई-सी दिखाई देने लगती है। उससे घबराना नहीं चाहिये, वरन् चक्र को एक स्थान पर ठहरने का प्रयत्न करना चाहिये।
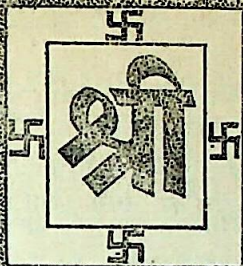
भारतीय शक्ति चक्र
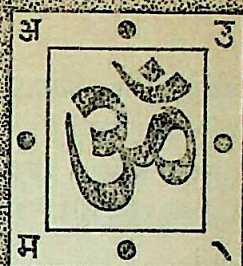
भारतीय ओंकार चक्र
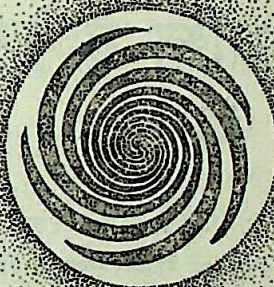
अमेरिकन शक्ति चक्र
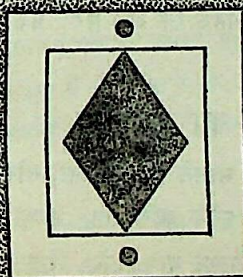
ग्रीक शक्ति (इष्टि) चक्र
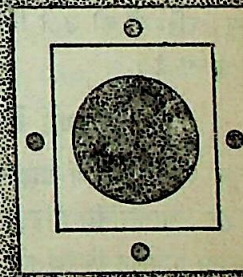
सार्वभौमिक बिन्दु चक्र

परन्तु, अधिक अभ्यास करते करते चक्र में कोई सुन्दर चित्र या श्रेष्ठ अभिव्यक्ति दिखाई देने का अनुभव हो तो उससे सफलता के निकट होना समझना चाहिए। इस प्रकार त्राटक की सिद्धि से साधकों को वशीकरण की शक्ति और नेत्र रोगों की निवृत्ति का लाभ प्राप्त हो जाता है।

सूर्य शक्ति से नेत्र-रोग निवारण

सूर्य की रोग निवारक शक्ति से लाभ उठाने की अन्य विधियां भी प्रचलित हैं। उनमें एक सूर्य रश्मि-चिकित्सा भी है, जिसके द्वारा नेत्र-रोगों को भी शीघ्र ही दूर करने में सफलता प्राप्त की जा सकती है। यह विधि भारत में प्राचीन काल से प्रचुलित रही है। बाद में पाश्चात्य देशों में भी इस पर परीक्षण हुए और उसमें अनेक प्रकार से प्रगति हुई। यहाँ सूर्य-रश्मियों की उसी विधि के नेत्र रोग-निवारक अंश पर प्रकाश डाला जाता है।

सूर्य किरणों में सात रङ्गों का समावेश

सूर्य की किरणों में सात रङ्गों का होना मानते हैं— पीला, नीला, लाल, हरा, आसमानी, नारङ्गी और बैंगनी। इनके अतिरिक्त इन्फ्रारेड और अल्टा वायलेट किरणें होती हैं, जो कि प्राणी मात्र के लिए नव जीवन प्रदान करती रहती है।

इसी प्रकार मनुष्य के समूचे शरीर, नेत्र आदि में भी उक्त सातों रंग

मिले रहते हैं। सामान्यतः यह शरीर पञ्चतत्वात्मक है, जिनमें आकाश और धरती तो स्थिर हैं। किन्तु वायु, अग्नि और जल सदैव स्पन्दनशील रहते हैं। इन तीन भूतों के रङ्ग पृथक-पृथक हैं, जैसे कि वायु का रङ्ग पीला, पित्त का लाल और कफ का नीला माना जाता है। कुछ लोगों का इसमें मत-वैभिन्न भी है।

इस प्रकार शरीर में वायु, अग्नि और जल अपने-अपने रङ्गों केसाथ शरीर में विद्यमान रहते हैं। उनकी साम्य अवस्था में मनुष्य पूर्ण स्वस्थ रहता है, जब कि असाम्य अवस्था ही मनुष्य को रोगी बना देती है और उस असाम्य अवस्था का कारण शरीर मेंवायु, अग्नि या जल में से किसी भी एक, दो या तीनों के रङ्गों की कमी हो जाना है।

आयुर्वेद ने पंचभूतात्मक शरीर में विद्यमान इन तीनो भूतों को पृथक रूप में बताया है। उसके अनुसार वायु को वात, अग्नि को पित्त और जल को कफ समझना चाहिए। मानव शरीर को स्वस्थ अवस्था में रखने का कार्य यह तीनों ही करते हैं। इनमें से एक तत्व का भी प्रकोप अपने से सम्बन्धित रंग की कमी करके शरीर को रोगी बना सकता है।

इसी सिद्धान्त पर प्राचीन आचार्यों ने सूर्य-रश्मि-चिकित्सा की विधि निश्चित की और उसमें प्रभावित अंग पर अपेक्षित रंग की किरण को छानकर उसका प्रकाश डालने और उसी रंग की बोतल का पानी दवा के रूप में सेवन करने का विधान है। उसके विषय में यहाँ पूर्ण प्रकाश डालना अनुचित नहीं होगा।

सूर्य-रश्मि कक्ष

इसके लिए एक ऐसा कमरा चुना जाय, जिसकी खिड़कियाँ पूर्व और पश्चिम दिशाओं में खुलती हों, जिससे कि उसमें प्रातःकाल पूर्व दिशा से और सायंकाल पश्चिम दिशा से सूर्य की किरणों का प्रवेश उन्मुक्त रूप से हो सके। उन खिड़कियों में किवाड़ें हों और उन पर काले रंग के पर्दे

भी पड़ें हों जिससे कि उन्हें बन्द कर देने पर यह कमरा एक अंधेरे कमरे (डार्क रूम) का रूप ले सके।

उस कमरे की पूर्व और पश्चिम की एक-एक खिड़की में ऐसी व्यवस्था रहे कि आवश्यक होने पर उनमें मन चाहे रंग का काँच आसानी ' फिट किया जा सके और रोगी के आक्रान्त अंग पर अपेक्षित रंग का प्रकाश डाला जा सके। बस, यह सूर्य-रश्मि कक्ष तैयार हो गया।

सूर्यतप्त जल या सूर्यतप्त तैल

जिस रंग का सूर्यतप्त जल आवश्यक हो उसी रंग की बोतल लेकर उसमें ताजा पानी भरें और डाट लगाकर धूप में ५-६ घण्टे रखें तो सूर्य तप्त जल तैयार हो जाता है। परन्तु, ध्यान रहे कि बोतल धरती पर रखने की अपेक्षा काष्ठ का कोई तख्ता या चौकी लेकर उस पर रखनी चाहिए। क्योंकि यदि बोतल धरती का स्पर्श करती रहती है तो उसके औषधि गुण को धरती खींच लेती है।

सूर्यतप्त तैल तैयार करने के लिए भी इसी विधि को काम में लाया जाता है। सूर्य-रश्मि-चिकित्सा में इसी प्रकार का तैल लगाने और मालिश करने के काम में आता है।

सूर्य-रश्मि-चिकित्सा का उपयुक्त क्रम

अब सूर्य-रश्मि-चिकित्सा के नेत्र-रोग निवारक क्रम पर प्रकाश डालना आवश्यक होगा—

सर्व प्रथम ध्यान रखने योग्य बात है कि दाँये नेत्र के रोगों और विकृतियों में हल्के पीले रंग का सूर्यतप्त डाला जाय तथा बाँये नेत्र के रोगों और विकृतियों में आसमानी रंग का सूर्यतप्त जल डालना चाहिए।

नेत्र दुखना ललोंई आदि में

रोगी को आसमानी रंग की बोतल का सूर्यतप्त पानी २० से २५ मिलीलीटर अथवा दो तोले तक की मात्रा में सेवन कराया जाय और

नेत्रों पर इसी रंग का प्रकाश डाला जाय। अच्छा हो कि रोगी आसमानी रंग का चश्मा पहिने रहे। इस व्यवस्था से रोहे भी दूर हो जाते हैं।

नेत्रों में दर्द, खड़का, ढलका आदि की अवस्था में हरे रंग का प्रकाश डालना और हरा चश्मा लगाना चाहिए। परन्तु सेवन के लिए आसमानी रंग की बोतल का पानी प्रयोग में लाया जाय।

यदि नेत्रों में कोई कंकड़ या रेल के इंजन का कोयला आदि प्रविष्ट हो जाय और उसके कारण चैन न पड़े तो पीली और आसमानी बोतल का समान भाग पानी मिलाकर २०-२५ मिलीलीटर की मात्रा में ही पिलावें तथा आसमानी रंग की बोतल का गर्म-ठण्डा सेंक करें।

गर्म-ठण्डे सेंक की विधि

गर्म ठण्डे सेंक की विधि यह है कि दो बर्तनों में आसमानी रंग की बोतलों का पानी भरें और उनमें से एक बर्तन को आग पर चढ़ा कर उसके पानी को गर्म कर लें। उस गर्म जल में कपड़ा या रुई भिगो कर आँखों को दो मिनट तक सेंकें और फिर एक मिनट तक ठण्डे बर्तन के पानी से सेंक करें।

नेत्रों में सूजन होने या तीव्र जलन होने, आँखों से पानी बहने आदि अवस्थाओं में आसमानी बोतल का सूर्यतप्त जल ३ भाग और पीली बोतल का एक भाग मिलाकर उक्त मात्रा में सेवन करावें। साथ ही हरी बोतल के सूर्यतप्त पानी से नेत्रों को गर्म ठण्डा सेंक दें और शिर पर हरी बोतल के जल या तैल में भिगोई हुई पट्टी रखें। नेत्रों में आसमानी बोतल का जल २-३ बूँद की मात्रा में दिन में २-३ बार ही डालें।

यदि नेत्रों में जाला, फूला, केश-कण्डुलम आदि में से कोई विकार हो तो नेत्र बन्द करके सूर्य की ओर देखें और फिर आसमानी रंग की

बोतल के छोटे या छपके मारें तथा इसी रंग के पानी से गर्म ठण्डा सेंक करें। सूर्य की ओर नेत्र बन्द करके देखने की क्रिया ५ मिनट से आरम्भ करें और १-१ मिनट नित्य बढ़ाते हुए १२-१५ मिनट तक ले जाँय।

दृष्टिमांद्य का उपचार

यदि ज्योति क्षीण हो गई हो, कम दिखाई देने लगा हो तो आसमानी रंग की बोतल के सूर्यतप्त जल के छींटे या झपके दें। तथा इसी रंग के पानी से आँखों को ठीक प्रकार से धोवें। नेत्रों के बाहर, पलकों पर नीली बोतल में सूर्यतप्त तिल-तैल लगाना चाहिए। नेत्रो के भीतर इसी रंग का घृत लगाया जाय।

नेत्रों में जलन और पलकों में फुन्सी का उपचार

यदि नेत्रों में जलन हो, पलकों के भीतरी भाग में फुन्सी और गर्म पानी निकले तो पीली और नीली बोतलों का पानी दिन में तीन बार दें तथा इसी प्रकार के मिश्रित पानी के छीटे दें और नेत्रों पर पट्टी भी रखें। इससे शीघ्र आराम सम्भव है।

गुहरे होने की अवस्था में पीली बोतल के पानी से गर्म-ठण्डे सेंक करें और आसमानी बोतल के पानी की २-३ मात्राएं जब तक गुहेरी नष्ट न हो, देते रहें। यदि गुहेरी में अधिक कष्ट हो और वह कड़ी हो तो नारंगी रंग की बोतल के पानी से उसे धोना चाहिए।

पलकों पर शोथ का उपचार

यदि आँखे भारी, पलकों पर शोथ और जलन का अनुभव हो तो आँखों पर हरी बोतल के पानी से छींटे दें और हरा चश्मा लगावें। पीने के लिए आसमानी रंग की बोतल के पानी की ३-४ मात्राएं दिन भर में देने से आराम प्रतीत होता है।

तीव्र खड़का मारने की अवस्था में भी हरी बोतल के पानी से ही आँखें धोनी और हरा चश्मा लगाना चाहिये। पीने के लिए पीली और आसमानी बोतलों के पानी का मिश्रण पिलाया जाय।

इसी प्रकार विभिन्न रंगों की बोतलों या काँच के अमृतवानों में सूर्यतप्त चीनी, मिश्री, गुड़, मुरब्बा आदि तैयार किया जा सकता है। ऊपर जिस रोग पर जिस रंग के पानी का सेवन करना कहा है, उस रोग पर उसी रंग के पात्र की चीनी, मिश्री आदि का सेवन किया जाय तो शीघ्र लाभ हो सकता है।

ध्यान रहे कि अधिकांश नेत्र रोगों में आसमानी रंग के पानी का अधिक प्रयोग होता है। रोगी को पहिनाये जाने वाले चश्मे का काँच हरा अथवा आसमानी रहना चाहिए। इन्हीं रंगों का प्रकाश डालना भी उपयोगी है। लाल, बैंगनी, नारंगी आदि तीव्र एवं उत्तेजक रंगों का प्रयोग नेत्र रोगों में प्रायः नहीं किया जाता।

नेत्र रोग और प्राकृतिक उपचार

नेत्र रोगों में औषधोपचार उतना प्रभावकारी नहीं होता, जितना कि प्राकृतिक उपचार। परन्तु उसकी जानकारी न होने से लाभ उठाना सम्भव नहीं होता। कुछ लोग प्राकृतिक उपचारों के प्रति अविश्वास रखने के कारण भी उनके उपयोग से वंचित रह जाते हैं किन्तु यह एक तथ्य है कि प्राकृतिक उपचारों के द्वारा नेत्र रोगों की स्थायी रूप से निवृत्ति हो सकती है। यहाँ उन पर प्रकाश डालना अपेक्षित है।

नेत्रों को धोने की विधि

आँखों के सामान्य रोग तो धोने से ही दूर हो जाते हैं। आँखों में कीचड़, दर्द एवं जलन आदि में तो धोने की क्रिया अवश्य ही करनी चाहिए. विधि इस प्रकार है—

प्रातःकाल शय्या से उठकर मुख में ताजा ठण्डा पानी भर लें और एक पात्र में भी ताजा ठन्डा पानी भर कर आँखों में छींटे दें। यह क्रिया एक समय में ४०-५० बार करनी चाहिए और अन्त में मुख का पानी निकाल देना चाहिए। अच्छा हो कि दिन में ४-५ बार छींटे देने की यह क्रिया सम्पन्न कर ली जाय। शौच से आकर या मूत्र त्याग के बाद भी इसका किया जाना हितकर होता है।

ताजा पानी के स्थान पर त्रिफला के पानी का प्रयोग सबसे उत्तम रहता है। उससे नेत्रों के अनेक विकार दूर होते और नेत्रज्योति बढ़ जाती है। यदि आँख दुखनी आगई हों तो गर्म पानी से धो सकते हैं। परन्तु, गर्मी से दुखने आई आँखों के लिए गर्म पानी का प्रयोग लाभकारी नहीं रहता। वरन् उस स्थिति में आँखों में गुलाब जल टपकाना उचित होता है।

आँखों पर भाप का प्रयोग

नेत्रों में दर्द, लाली, क़ीचड़ आदि में भाप लेने की यह क्रिया भी कम लाभदायक नहीं होती—

एक सँकरे मुख की पतीली लेकर उसमें साफ ताजा पानी भरें और मुख पर ढक्कन रखकर आग पर चढ़ा कर खौला लें। तदुपरान्त उस पतीली को इस प्रकार रखें कि उसका मुख अपनी आंखों के नीचे कुछ दूरी पर रहे, जिससे कि भाप लेने में सरलता रहे।

अब एक मोटा तौलिया लेकर शिर पर इस प्रकार डालें कि उससे समूचा शरीर ढक जाय और पतीली से निकलने वाली भाप रुकी रहकर

आँखों पर लग सके। इतना करने के बाद आँखों को बन्द करके पतीली का ढक्कन हटा दें और ८-१० मिनट तक पलकों पर भाप लगने दें। उसके बाद बन्द आँखों के बाह्य भाग को ठन्डे पानी से ठीक प्रकार धो डालें। परन्तु धोने से गीले हुए भाग को वस्त्र या तौलियें से न पोंछ कर हाथ की हथेली से धीरे-धीरे मल कर उसके समूचे पानी को सुखा दें। यह प्रयोग पलकों की सूजन एव पलकों के अन्यान्य रोगों में भी उपयोगी है।

नेत्र रोगों को दूर करने के लिए मालिश के प्रयोग

निम्न प्रकार से आँखों की मालिश करने से उनके अनेक रोग दूर होते और दृष्टि तीव्र होती है—

(१) कानों की ओर के भाग में नेत्रों के समीप दोनों हथेलियों से जल्दी-जल्दी सूखी मालिश करनी चाहिए। अथवा यों समझिये कि कनपटियों पर हथेलियों से सूखी मालिश करना हितकर रहता है। साथ ही मस्तक और मुख पर भी हथेली से शुष्क मालिश की जाय।

(२) स्नान के पश्चात् गर्दन से ऊपर के भाग को कपड़े से पोंछकर सुखाने की अपेक्षा हथेली द्वारा शुष्क मालिश करके सुखाना अत्यन्त लाभदायक है।

(३) आंखों को बन्द करके उनके बाह्य भाग पर गाय के घृत की मालिश धीरे-धीरे करें। साथ ही यह मालिश कनपटियों और मस्तक पर भी करनी हितकर रहती है।

(४) बादाम रोगन और गोघृत मिलाकर भोंहों पर धीरे-धीरे मालिश करना भी नेत्र रोगों में हितकर है।

(५) रात्रि में शयन के समय पाँवों के तलुओं पर सरसों के तैल की मालिश करने से नेत्रों के अनेक विकार दूर हो जाते हैं।

(६) सरसों का तैल शिर में मलना भी लाभदायक है। उससे नेत्रों को तो बल मिलता ही है, केशों की जड़ें भी मजबूत होजाती है।

नेत्रों के उपयोगी व्यायाम

व्यायामों से आँखों के अनेक रोगों का शमन होता है। उनकी विधि निम्न प्रकार है—

(१) नेत्रों की पुतलियों को दाँयी-बाँयी ओर घुमा कर देखने का व्यायाम करें। इसमें २-३ मिनट का समय देना पर्याप्त होगा।

(२) नेत्र-दृष्टि को १ मिनट के लिए भौंहों के मध्य स्थिर करें और तत्पश्चात् १ मिनट तक धरती की ओर देखें।

(३) आँखों की दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर लगावें और १ मिनट के पश्चात् आँखें बन्द कर लें।

(४) पलको को तेजी से खोलने बन्द करने का अभ्यास करें तथा इसमें १-२ मिनट का समय लगावें। यह अभ्यास नित्य प्रति ४-५ बार करना पर्याप्त होगा।

(५) नेत्रों को जोर से बन्द करें और १० सैकिन्ड बाद तुरन्त खोल दें।

(६) नेत्रों को दाँयीं ओर को चक्र के आकार में घुमावें और तदुपरान्त बाँयी ओर को घुमाने की क्रिया करें।

ठण्डे पानी का सेंक

एक रूँआदार तौलिया लेकर उसके चार तह कर लें और ठन्डे पानी में डुबोकर उसे आँखों पर रखें तथा जब वह गर्म हो जाय तब हटा दें। यह प्रयोग दिन में कई बार करना चाहिए और इसके लिए अधिक से अधिक ठण्डा पानी लिया जाना चाहिए। कुछ विशेषज्ञ इस कार्य में घड़े के बासी पानी का प्रयोग उचित मानते हैं। इससे आँखों के दर्द, खड़का, शोथ आदि में लाभ होता है।

मुख-वाष्प का सेंक

एक मोटा कपड़ा या तौलिया लेकर उसकी गद्दी सी बनावें और मुख से फूँक कर आँखों पर रखें। यह क्रिया बार-बार करनी चाहिए।

इससे भी आँखों के दर्द, खड़का, लाली, शोथ एवं चकाचौंध आदि में शीघ्र आराम सम्भव है।

गर्म पानी का सेक

सर्दी से आने वाली आंख में गर्म पानी का सेंक लाभदायक रहता है। पलकों पर सूजन, खड़का, दर्द आदि में भी इसका उपयोग उचित है। इसके लिए मोटे कपड़े को गर्म पानी में भिगो कर निचोड़ें और आँखों पर रखें। अथवा रबड़ की थैली में गर्म पानी भर कर भी सेंक कर सकते हैं।

मिट्टी की पट्टी

नेत्र के विकारों को दूर करने में मिट्टी की पट्टी भी बहुत सहायक होती है। यह पट्टी आँखों पर तो रखी ही जाती है साथ ही पेडू पर भी रखनी चाहिए। इसके लिए स्वच्छ स्थान की कोमल और साफ मिट्टी प्रयोग में लायी जाय।

साफ मिट्टी प्राप्त करने के लिए धरती को ४०-५० सेंटीमीटर नीचे तक खोदें अथवा जहाँ से कुम्हार अपने बर्तन बनाने के लिए मिट्टी लाते हैं, उस स्थान की मिट्टी काम में लावें। वर्षा ऋतु में नदियों में जो मिट्टी जम जाती है, वह भी इस कार्य में उत्तम रहती है। यदि मिट्टी अधिक चिकनी हो तो उसमें रेत मिला लेना चाहिए। अभिप्राय यह है कि पट्टी के प्रयोग में लायी जाने वाली मिट्टी न तो अधिक चिकनी हो और न अधिक रेतीली ही हो।

इस प्रकार की मिट्टी प्राप्त करके उसे धूप में सुखा लें और फिर कूट छानकर किसी ढक्कनदार कनस्टर में भर लें। आवश्यकता के समय इस मिट्टी का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए।

रात्रि के समय अपेक्षित मात्रा में कनस्तर से मिट्टी निकालकर किसी बर्तन में रखें और पानी डालकर भीगने दें तथा प्रातःकाल इसे काम में लावें।

नेत्रों पर लगाने की पट्टी १५-२० सेंटीमीटर लम्बी और १०-१२ सेंटीमीटर चौड़ी रहनी चाहिए। उस पर डेढ़-दो सेंटीमीटर मोटी मिट्टी की पर्त चढ़ा ली जाय। यह पट्टी आकार में आवश्यकतानुसार छोटी या बड़ी भी रखी जा सकती हैं। इसे लम्बाई में एक कान से दूसरे कान तक और चौड़ाई में नासिका से मस्तक तक चढ़ा देना चाहिए।

यह पट्टी इस प्रकार लगाई जाय कि शरीर की त्वचा से मिट्टी का सीधा स्पर्श होता रहे। पट्टी चढ़ाकर ऊपर से ऊनी कपड़ा लपेट दिया जाय। जब मिट्टी गर्म हो जाय तब पट्टी हटा दें। इस पट्टी को दिन में २-३ बार चढ़ा सकते हैं। प्रत्येक बार का समय आधे घन्टे से एक घन्टा तक का रहना पर्याप्त है।

परन्तु ध्यान रहे कि एक बार प्रयोग में लायी गई मिट्टी का दुबारा प्रयोग नहीं करना चाहिए। प्रत्येक बार नई मिट्टी लेकर पट्टी बनावें और आँखों पर रखें। पट्टी हटाने के पश्चात् आँखों को ठन्डे पानी से धोवें और अंगुलियों के पोरों से हल्की मालिश करते हुए पानी को सुखा लें।

मिट्टी की पट्टी कम से कम आध घन्टा तक अवश्य चढ़ी रहनी चाहिए। यदि वह कम समय में गर्म हो जाय तो उसे हटा कर तुरन्त ही नयी पट्टी चढ़ा दी जाय। पट्टी चढ़ी होने की अवस्था में आँखों को हवा लगने से बचाने के लिए उस पर ऊनी कपड़ा लपेट देना हितकर होता है।

मिट्टी की पट्टी चढ़ाने से पूर्व इस बात का भी ध्यान रखें कि जहां पट्टी चढ़ाई जाती है। वह भाग अधिक ठण्डा न हो। यदि ठण्डा हो तो उसे सेंक कर गर्म कर देना चाहिए।

पेड़ू पर चढ़ाने की पट्टी का आकार ३०-३५ सेन्टीमीटर लम्बा और

१५ सेन्टीमटर चौड़ा होना चाहिए। इस पर दो-ढाई सेन्टीमीटर मोटी मिट्टी की पर्त चढ़ाकर पेडू पर लगावें और ऊपर से ऊनी वस्त्र लपेट दें। शेष सभी नियम नेत्र पर चढ़ायी जाने वाली पट्टी के समान हैं।

उदर पर ठण्डी लपेट

उदर पर ठण्डे कपड़े की लपेट लगाने से आंतों की क्रिया सुधरती है, जिसका प्रभाव आंखों पर भी पड़ता है। इसके लिये ३ मीटर लंम्बा मोटा वस्त्र अथवा तौलिया लेकर ठण्डे पानी में भिगो-निचोड़कर पेट पर लपेटना चाहिए। यह लपेट न तो अधिक ढीली हो और न अधिक कड़ी हो। गीले कपड़े की इस लपेट के ऊपर ऊनी वस्त्र लपेट दिया जाय।

यह लपेट एक घण्टे तक लगी रहनी चाहिए। उसके बाद लपेट को हटा कर उस स्थान को भीगे तौलिये से रगड़ कर पोंछ डालना चाहिए।

कटि स्नान या टब स्नान

कटि स्नान से कोष्ठ बद्धता दूर हो जाती है, इसलिए नेत्र-रोगों की निवृत्ति में भी इसका अत्यधिक उपयोग है। क्योंकि नेत्र-रोगों का भी प्रमुख कारण कोष्ठ बद्धता ही है।

कटि स्नान के उद्देश्य से एक विशेष प्रकार का टब मिलता है उस में इतना पानी भर दिया जाता है कि बैठने पर पानी कमर तक आ जाय। उसमें बैठ कर पांवों को बाहर निकाल दें और एक रूआंदार तौलिया लेकर उसे पानी में भिगोवें पेड्डू पर धीरे धीरे रगड़ें यह क्रिया १० से २० मिनट तक करनी चाहिए।

कटि स्नान के लिए जो पानी लिया जाय, वह शरीर के तापमान से कुछ ही कम तापमान का हो। कटि स्नान के पश्चात् शरीर को सूखे तौलिये से पोंछ कर कपड़े पहिन लें और टहलने के लिये निकल जांय। अथवा ऊनी कम्बल ओढ़ कर आराम से लेट जांय। यदि सर्वाङ्ग स्नान करना हो तो कटि स्नान के एक घण्टे भर बाद करना चाहिये।

नेत्र-रोग निवारणार्थ टहलने की विधि

टहलने का सीधा-साधा अर्थ दूर तक घूम आना लगाया जाता है तथा बहुत-से मनुष्य टहलने की क्रिया के द्वारा लाभ उठाने की दृष्टि से कई मील तक नित्य भ्रमण करते हैं। यद्यपि वह भ्रमण भी बहुत लाभ-दायक होता है, तथापि यदि उसमें कुछ सुधार किया जा सके तो और भी अधिक लाभ उठाया जा सकता है।

टहलने के लिए कोई लम्बा पार्क चुना जाय, जिसमें कोमल घास उगी हुई हो। परन्तु वह घास अधिक लम्बी नहीं होनी चाहिये। नंगे पांव उस घास पर टहलना चाहिए, जिससे कि घास का स्पर्श पांवों के तलुओं से होता रहे। इसका प्रभाव नेत्रों पर बहुत ही अनुकूल रूप से पड़ता है। यदि पार्क छोटा हो तो इधर-से-उधर अधिकाधिक चक्कर लगाने चाहिए। अभिप्राय यह है कि उन चक्करों का परिमाण एक दो किलोमीटर तक हो जाय तो बहुत लाभ हो सकता है।

ग्रीष्म ऋतु में प्रातःकाल के पूर्व, ओस में टहलना भी नेत्र रोगों की निवृत्ति में हितकर होता है। अथवा कोमल मिट्टी वाली पगडंडी पर घूमना चाहिये।

शीत ऋतु हो और प्रातःकाल टहलने में ठण्ड का अधिक अनुभव हो तो धूप निकलने पर भी टहला जा सकता है। परन्तु उससे अपेक्षित लाभ नहीं हो पाता।

सूर्य दर्शन की विधि

प्रातःकाल जब सूर्य अपनी लाली छोड़ कर पूर्ण रूप से उदय हो गया हो, तब सूर्य के समक्ष खड़े होकर आँखों पर दोनों हाथों की अँगुलियों को इस प्रकार रखें कि अँगुलियों की जाली-सी बन जाय, जिससे कि सूर्य की किरणें आंखों पर न पड़ कर केवल अँगुलियों की जाली पर ही पड़ें।

यह क्रिया ४-५ मिनट तक कर सकते हैं। क्रिया करने के १० मिनट बाद आँखों को ठण्डे पानी से धोकर अँगुलियों से मालिश करते हुए सुखा लेना चाहिये ।

चन्द्र-दर्शन की विधि

शरद पूर्णिमा की शुभ रात्रि में खुले नेत्रों से चन्द्रमा का दर्शन करना अत्यन्त लाभकारी है । दर्शन की यह क्रिया सामान्यतः १५-२० मिनट तक करना पर्याप्त होता है।

शरद पूर्णिमा के अतिरिक्त अन्य पूर्णिमाओं में भी चन्द्र दर्शन की यह क्रिया कर सकते हैं । यह प्रयोग देखने में सामान्य, किन्तु अत्यन्त लाभदायक है ।

अन्धकार दर्शन की विधि

दोनों हाथों की हथेलियों की कटोरी जैसी वना लें और उन्हें दोनों नेत्रों पर इस प्रकार से रखें कि हथेलियों के भीतर नेत्र तो खुले रहें, परन्तु उनके सासने अँधेरा रहा आवे । यह क्रिया निरन्तर एक मिनट तक करें और फिर हथेली हटा लें। इस प्रकार एक-एक मिनट के पश्चात् कई वार करें । यह क्रिया नेत्रों की थकान को दूर करने में अत्युपयोगी है । खड़का, दर्द, लाली आदि में भी इससे आराम मिलता है ।

शयन कालीन क्रियायें

रात्रि जागरण से नेत्रों को हानि पहुँचती है । इसी प्रकार दिन में सोना भी अहितकर है । रात्रि में सोने से २ घण्टे पहिले भोजन कर लिया जाना चाहिये । प्रायः रात्रि के १० वजे तक सो जाना अपेक्षित है ।

सोने से पहिले हाथ, पांव, मुख और नेत्रों को धोकर मुख में पानी भर लें और सो जाय । सोने का कमरा स्वच्छ और हवादार होनाचाहिये ग्रीष्म ऋतु हो तो खुले स्थान में सोवें ।

जाड़ों की ऋतु में शरीर को रुई की रजाई या ऊनी कम्बल आदि ओढ़ कर ढक लेना चाहिए। परन्तु, मुख ढक कर कभी न सोवें। क्योंकि श्वास-प्रश्वास द्वारा निकलने वाली विषैली गैस, मुख ढक कर सोने में रजाई या कम्बल की बाधा के कारण बाहर नहीं निकल पाती, जिसके फल स्वरूप नेत्र भी उससे बुरी तरह प्रभावित होते हैं।

सोने से पहिले नेत्रों में गाय का घी लगाना भी हितकर है। अँगुलियों पर घी लगाकर पलकों पर मालिश करनी चाहिए। जब रात्रि में नींद खुल जाय तो चारपाई से उठकर कुल्ले करें और आँखों को धोकर ही सोवें। यह सब क्रियायें नेत्रों के लिए हितकर हैं।

सोने से पहिले चित्त को विकार-रहित करने का प्रयत्न करें। अच्छा हो कि भगवान् का स्मरण कर लिया जाय तो चित्त में शान्ति आ सके। यदि उस समय मेहन स्नान करलें तो और भी अधिक लाभ उठा सकते हैं।

मेहन स्नान की विधि

यह स्नान कटि स्नान वाले टब में बैठ कर ही किया जा सकता है। उस टब में १५ सेन्टीमीटर लम्बी और उतनी ही चौड़ी एक चौकी रख देनी चाहिये। उस चौकी की ऊँचाई ३-४ सेन्टीमीटर हो सकतीहै। टब में ठण्डा पानी इस प्रकार से भरा जाय कि चौकीके चारों ओर पानी भर जाय, किन्तु बैठने का बीच वाला भाग सूखा रखा आवे। उस चौकी पर बैठ कर आंखों को धोना चाहिये तथा पेड़ू पर भी पानी के सहारे से हल्की मालिश करनी चाहिये। यह क्रिया पांच मिनट तक करनी पर्याप्त है।

पानी में आँखें खुलने की क्रिया

प्रातःकाल स्नान करते समय किसी चौड़े बर्तन (भगौने आदि) में पानी भर कर उसमें आँखों को रखें और पानी में आंखों को खुली रखें।

यह क्रिया १० संकिन्ड तक करनी पर्याप्त है । इससे अनेक प्रकार के नेत्र विकार दूर हो जाते हैं ।

पानी में आंखें खुली रहने की यह क्रिया किसी नदी के जल में डुबकी लगा कर की जाय तो बहुत लाभप्रद हो सकती है ।

यह तथ्य पहिले भी बता चुके हैं कि नेत्र रोगों की उत्पत्ति का एक प्रमुख कारण कब्ज भी है । इसलिए नेत्र-रोगों की निवृत्ति के लिए कब्ज के निवारण का उपाय करना आवश्यक होता है । जो लोग कब्ज नहीं होने देते वे प्रायः सभी रोगों से बचे रहते हैं । कब्ज दूर करने के लिये एनिमा एक विश्वस्त उपाय है ।

एनिमा की विधि

इसके लिये किसी कड़ी चारपाई अथवा तख्त पर पीठके बल (चित्त) लेटना चाहिए । चारपाई का सिराहना कुछ नीचा और पायताना कुछ ऊँचा रहे । रोगी उस पर लेटकर अपने पांवों को उकडूं करले ।

अब ऐनिमा के बर्तन को चारपाई से लगभग सवामीटर की ऊंचाई पर दीवाल की किसी कील या खूटी के सहारे टाँग दें । बर्तन में दो-ढाई लीटर की मात्रा में गुनगुना पानी भर कर, नोजिल खोलकर थोड़ा सा पानी निकाल दें और फिर नली के गुदा में प्रविष्ट होने वाले भाग को एरन्ड तैल से स्निग्ध करके गुदा मार्ग के भीतर लगभग ढाई सेन्टीमीटर घुसा कर पानी को भीतर जाने दें तथा उस समय पेडू को बांयी से दांयी ओर धीरे-धीरे मलें । जब पूरा पानी भीतर पहुंच जाय तब नली को निकाल लें और कुछ देर बाद पेडू को पुनः उसी प्रकार से मलें । उसके बाद पानी को १०-१५ मिनट तक आंतों में रोके रख कर शौच के लिये चले जांय, एनिमा की इस क्रिया से उदर में संचित मल निकल कर शरीर हल्का हो जाता है ।

लंघन या उपवास

पुराने मलावरोध में ३ से ७ दिन तक लंघन का उपवास भी करना होता है। उपवास काल में फलों का रस ले सकते हैं। अच्छा तो यह है कि एक गिलास पानी में चार चम्मच शहद और एक कागजी नीबू का रस मिला कर सेवन किया जाय। यह पेय दिन में २-३ बार तक ले सकते हैं। उपवास के साथ दिन में एक बार एनिमा भी ले लेना चाहिए।

गर्म ठण्डी सेंक का प्रयोग

इसके लिये दो वर्तनों से काम लेना होता है। एक वर्तन में ठण्डा और दूसरे में उबलता हुआ पानी भरते हैं। पानी की मात्रा २-२ लिटर के लगभग होनी चाहिए। अब मोटे कपड़े की दो गद्दियां जैसी बनाकर दोनों बर्तनों में डाल दें। पहिले गर्म पानी की गद्दी को निचोड़ कर आँख पर रखें और १ मिनट तक सेंक करें। इसके बाद ठण्डे पानी की गद्दी को निचोड़ कर ३० सैकिन्ड तक आँख पर रखें। यह क्रम ३-४ बार दुहराने से गर्मी सर्दी (कफ-पित्त) से उत्पन्न हुए नेत्र, खड़का आदि में लाभ होता है।

गर्म ठण्डा बैठक स्नान

स्नान की यह क्रिया कब्ज को दूर करने में उपयोगी होने के कारण नेत्र-विकारों को दूर करने में भी सहायक सिद्ध होती है। इसके लिए भी कटि-स्नान वाले टब में ही बैठना होता है। परन्तु इसके लिये दो टबों का होना अपेक्षित है, जिनमें से एक में ठन्डा और दूसरे में गर्म पानी भरा जाना चाहिये।

सर्व प्रथम शिर को ठन्डे पानी से धोकर उस पर एक भीगा हुआ वस्त्र रख लें तथा चार मिनट तक गर्म के टब में बैठें। उसके बाद दो

मिनट तक ठन्डें पानी के टब में बैठना उचित है । इस क्रमसे यह क्रिया ३-४ बार की जानी चाहिए ।

इस प्रकार प्राकृतिक उपचारों के द्वारा नेत्र-रोगों को स्थायी रूप से दूर किया जाना सम्भव है । यह क्रियायें अन्य विकृतियों को भी दूर कर देती हैं ।

नेत्र रोगों में उपचार विषयक निर्देश

दूर दृष्टि के विकार

दूर दृष्टि की खराबी का रोग अधिक श्रमके कारण होता है। जब दूर की वस्तु को देखने में अधिक श्रम करना पड़ता है, तब नेत्र-तन्त्र प्रभावित हो जाता है । जिसके फल स्वरूप दूर की दृष्टि कमज़ोर पड़ती जाती है । किन्तु उनका प्रभाव समीप दृष्टि पर नहीं पड़ता और ऐसे व्यक्ति 'शॉर्ट साइटेट' कहलाते हैं ।

यदि कोई कारण न हो तो दूर दृष्टि का रोग बुढ़ापे से पहिले नहीं होता । क्योंकि यह रोग भी वृद्धावस्था का ही माना जाता है । उस अवस्था में जब रस, रक्त आदि धातुओं की कमी होने लगती है, तब उसका प्रभाव आँखों पर भी पड़े बिना नहीं रहता । उसके फल स्वरूप दूर दृष्टि कमजोर होती चली जाती है ।

दूर दृष्टि खराब होने पर पर दूर के दृश्य आदि का देखना कठिन होता है और तब तौर बांध कर देखने की आवश्यकता होती है । किसी

किसी को तो २० मीटर दूर के साइनबोर्ड पढ़ना भी कठिन हो जाता है। उसका एक कारण पोषणहीन असन्तुलित आहार भी है।

यह रोग आज कल तो छोटे आयु के मनुष्यों में भी देखा जाता है। विद्यार्थियों को ही लीजिए, वे दूर दृष्टि से काम लेने के लिये चश्मा लगाने के लिये विवश होते हैं। धीरे-धीरे रोग बढ़ता जाता है, इसलिये चश्मे का नम्बर भी बढ़ने के कारण उसमें परिवर्तन करते रहना होता है।

दूर दृष्टि की खराबी वाले मनुष्यों की समीप दृष्टि ठीक रहती है, इसलिये ही वस्तुओं को देखने में उन्हें कोई परेशानी नहीं होती। जो लोग गरिष्ठ भोजन करने के आदी हैं और परिश्रम विल्कुल भी नहीं करते उन्हें ही इसका शिकार अधिक होना पड़ता है। यदि शारीरिक स्वास्थ्य ठीक नहीं होता तो भी यह विकार उत्पन्न हो सकता है।

जो लोग इस रोग से बचना चाहें, उन्हें अपना भोजन सन्तुलित और पोषण युक्त रखना चाहिए। साथ ही अपनी शक्ति के अनुसार शारीरिक परिश्रम करना भी बहुत आवश्यक है।

आधुनिक चिकित्सक इसका एक मात्र उपाय चश्मा ही मानते हैं। परन्तु, से दूर-दृष्टि में सहायता तो मिलती है, किन्तु दृष्टि में तीव्रता नहीं आती। इसलिए चश्मे को इसका सहायक उपचार तो माना जा सकता है, किन्तु स्थायी इलाज नहीं।

इसके लिये नेत्रों की नित्य प्रति सफाई करते रहें, तथा नेत्रों की क्रिया को स्वाभाविक रखने वाले व्यायाम करें। पामिंग की क्रिया इस रोग में बहुत हितकर होती है। झूमने का व्यायाम भी लाभप्रद होता है। जितनी दूर रख कर सरलता से पुस्तक पढ़ सकते हों उतनी दूर रखकर पढ़ें। जहां तक सम्भव हो पुस्तक पढ़ने की दूरी प्रायः ३५ सेन्टीमीटर रहना उचित है।

एक अभ्यास यह भी किया जा सकता है कि किसी पुस्तक को ५

मिनट तक सरलता से पढ़ा जाय । यदि चश्मा लगाते हों तो उसे उतार दें । पुस्तक पढ़ने के अभ्यास के तुरन्त बाद आँखों को बन्द करके ५ मिनट तक विश्राम देना आवश्यक है । उसके पश्चात् पढ़ी हुई पंक्तियों के मध्य के श्वेत भाग को देखने का अभ्यास करें । यह अभ्यास भी ५ मिनट तक पलक झपकाते हुए करना चाहिए । इसके बाद पुनः नेत्र बन्द करके आराम किया जाय ।

अब तीसरी बारी में महीन अक्षर पढ़ने का ५ मिनट तक अभ्यास करें और फिर ५ मिनट तक पुनः विश्राम करें। इस प्रकारके अभ्यास की यह अन्तिम क्रिया है । इसे नित्य प्रति करने में प्रायः आधे घन्टे का समय लगता है । इस क्रिया से दूर-दृष्टि तीव्र होती है और चश्मा लगाने के कारण उत्पन्न हुआ दर्द भी शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

पढ़ने की उक्त तीनों क्रियाओं में सीधे, समान रूप से बैठना चाहिये ग्रीवा भी पूर्णतया सीधी रखी जाय । पढ़ने के समय पलक झपकाने की क्रिया भी बार-बार की जाती रहे । साथ ही यह ध्यान रखा जाय कि पुस्तक के अक्षरों पर सीधी दृष्टि पड़े ।

आहार की ओर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है । किसी भी प्रकार यह प्रयत्न किया जाय कि कब्ज न हो पाये । क्योंकि कब्ज हीं सब विकृतियों का मूल कारण होता है ।

समीप दृष्टि की खराबी

समीप दृष्टि की खराबी भी आज कल बहुत बढ़ती जा रही है । जिसे भी पढ़ने-लिखने का कार्य अधिक पड़ता है, वहीं चश्मा लगाने लगता है। चश्में के विशेषज्ञों का मत है कि समीप दृष्टि की खराबी का एक मात्र उपाय चश्मा होहै, क्योंकि चश्मा लगाने से पढ़ने का कार्य इतनी आसानी से होता है कि आँखों पर जोर नहीं पड़ता ।

परन्तु, चश्मा इस रोग में भी, उससे आराम पाने के लिये एक सहा

यक कारण तो हो सकता है, किन्तु समुचित उपाय कदापि नहीं हो सकता। बहुत बार तो चश्मा लगाने से भी दृष्टि का गिरना रुकता नहीं, वरन् वह बराबर जारी रहता है और चश्मे का नम्बर बढ़ता जाता है।

आँख का यह रोग गलत ढङ्ग से देखने के कारण ही प्रायः अधिक होता है। वैसे तो आंखों के सभी रोग प्रायः आँखों के गलत रख रखाव के कारण 'फंक्शनल' होते हैं। इसलिये उनके सुधार की दिशा में किये जाने वाले प्रयत्न से रोग का निवारण हो सकता है इस विषय में नेत्र विशेषज्ञों ने कुछ नवीन खोजें भी की हैं।

आधुनिक चिकित्सकों की भाषा में समीप दृष्टि की खराबी को 'मायोपिया' कहते हैं। इसमें चश्मा लेने से रोगी को उसी का आश्रित होना पड़ता है। पहिले जो कार्य बिना चश्मे के कर लिये जाते थे, वे भी जब से चश्मा चढ़ता है, तब से किये जाने कठिन हो जाते हैं।

समीप दृष्टि अथवा मायोपिया, जिसे आयुर्वेद ने तिमिर रोग कहा है, एक ऐसा रोग है, जो धीरे-धीरे बढ़ता है। यदि इसके आरम्भ में ही कोई उचित उपचार किया जाय तो रोग-वृद्धि को रोका जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सकों के मत में यह रोग भी दूषित आहार-विहार, परिश्रम की कमी, पढ़ने-लिखने में गलत ढंग का प्रयोग अथवा अधिक श्रम के कारण उत्पन्न होता है।

इस रोग से बचने या नम्बर न बढ़ने देने के लिए यह आवश्यक है कि चश्मे का प्रारम्भ से ही उपयोग न किया जाय अथवा चश्मा लिए हुए कुछ ही समय हुआ हो तो उसे उतार कर रख देना चाहिए। किन्तु अधिक दिनों से चश्मा लगाते हों तो उसे तुरन्त छोड़ देने की बात हम नहीं कहते। उसके लिए धीरे-धीरे प्रयत्न किया जाना चाहिए।

हाँ, आप यह तो कर ही सकते हैं कि चश्मे को हर समय न लगाये

रहें, वरन् आवश्यक होने पर ही लगावें। जिस समय लगावें, उस समय भी यह ध्यान रखें कि चश्मे के मध्य भाग में अथवा सामने की ओर देखने का प्रयत्न करें। पढ़ते समय अक्षरों के साथ-साथ नेत्र दृष्टि को न चला कर शिर को चलाते रहें। ऐसा करने से आँखों पर कम जोर पड़ता है।

यह भी ध्यान रहे कि समीप दृष्टि में उसी का चश्मा लगावें। दूर दृष्टि के चश्मे से समीप दृष्टि का काम कदापि न लें। चश्मे में से भी टकटकी लगाकर न देखें तथा अपलक देर तक देखने की आदत को दूर कर, बीच-बीच में पलक मारने की क्रिया करते रहें।

प्रत्येक एक घन्टे के अन्तर पर नेत्रों को विश्राम देने के लिए पामिंग की क्रिया करें। आँखों पर हथेलियाँ रखकर दो से पाँच मिनट तक आराम करें तो उससे समीप दृष्टि में बहुत कुछ लाभ हो सकता है।

झूमने का व्यायाम इसमें भी उपयोगी है। अथवा इसी पुस्तक में वर्णित निकट दृष्टि तीव्र करने वाला व्यायाम करना चाहिए। प्रातः सायं दोनों समय आँखों में ठण्डे पानी के २५-३० छींटे दें अथवा एक भगौने में पानी भर कर उसमें आँखों को करके कुछ सैकिन्ड खुली रखें। स्मरण शक्ति या कल्पना शक्ति बढ़ाने का अभ्यास भी इसे रोग में हितकर रहता है।

भेंगा देखने का विकार

यद्यपि यह विकार बहुत कुछ आदत पर भी निर्भर है। नेत्रों से देखने के गलत ढंग के कारण इस प्रकार की आदत पड़ जाती है। यह आदत इतनी दुःखमयी हो जाती है कि रोगी अपने में हीन भावना (इन्फीरियटी कम्पलैक्स) का अनुभव करने लगता है। विशेष कर किसी स्त्री के लिए तो यह आदत बहुत बड़ी समस्या बन जाती है। उनका दाम्पत्य जीवन भी दुःखमय बन जाता है। यदि किसी कुमारी में यह रोग है तो उसके विवाह में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

भेंगेपन को पाश्चात्य भाषा में 'स्क्वेंट' कहते हैं। जब इसमें पुराना-पन आ जाता है, तब नेत्र अपने स्थान से हटकर अन्य स्थान ग्रहण कर लेते हैं। एक अथवा दोनों आँखें बाहर या भीतर को फिरती हैं, जिसके फल स्वरूप रोगी को एक ही वस्तु दो दिखाई देने लगती हैं।

यह रोग आधुनिक विशेषज्ञों ने तीन प्रकार का माना है—(१) कन्वर्जेंट स्क्वेंट, (२) डाइवर्जेंट स्क्वैन्ट, और (३) वर्टिकल स्क्वैन्ट प्रथम प्रकार के भेंगेपन में नेत्र नाक की ओर फिरता है, जबकि द्वितीय प्रकार में नेत्र कान की ओर फिरता है। तृतीय प्रकार के भेंगेपन में नेत्र नीचे अथवा ऊपर की ओर फिरने लगता है।

सामान्यतः भेंगापन एक नेत्र में होता है, परन्तु कुछ व्यक्तियों में यह दोनों नेत्रों में देखा जाता है। इसकी उत्पत्ति में भी अनेक कारण माने जाते हैं। कुछ के मत में मांसपेशियों और शिराओं की दुर्बलता से यह रोग उत्पन्न होता है। कुछ मत में इसका कारण समीप दृष्टि की खराबी ही है।

कुछ अन्य विशेषज्ञों का मत है कि नेत्रों में दर्शन शक्ति की कमी (दृष्टिमांद्य) होजाने से ही इस रोग का प्राकट्य होता है। यही कारण है कि जिन व्यक्तियों की दृष्टि क्षीण हो जाती है, वे व्यक्ति इस व्याधि के भी शिकार पाये जाते हैं।

देखने का कार्य दोनों नेत्रों को मिलकर करना होता है। उनमें से यदि एक नेत्र कमजोर होता है तो देखने में उसे अधिक परिश्रम करना पड़ता है। उसके फल स्वरूप अक्षि गोलक और उसके निकटस्थ भाग में विद्यमान शिराएँ अधिक कमजोर होती हुई दृष्टि को भी अधिक कम-जोर कर देती हैं। उसका परिणाम यह होता है कि कमजोर नेत्र अधिक क्षीण और भेंगा होने लगता है। यदि दोनों नेत्र कमजोर होते हैं तो दोनों में ही भेंगापन आ जाता है। इससे चेहरा और भी भद्दा प्रतीत होने लगता है।

आधुनिक चिकित्सक इस रोग में ऑपरेशन, चश्मा तथा औषधि का भी प्रयोग करते हैं किन्तु इसका कोई पूर्ण सफल उपाय चिकित्सा विज्ञान अभी तक नहीं कर सका है। यदि प्राकृतिक उपचारों से काम लिया जाय तो लाभ की बहुत कुछ सम्भावना हो सकती है।

भेंगेपन का प्रमुख कारण तनाव है, जिसे दूर करने केलिए इसी पुस्तक में वर्णित प्राकृतिक साधनों से काम लेना चाहिए। वे क्रियाएँ अधिक उपयोगी रहेंगी, जिनसे नेत्रों की नस-नाड़ियाँ अपनी स्थिरता छोड़ कर अधिकाधिक गतिशीलता प्राप्त कर सकें।

भेंगेपन के शिकार हुए रोगी को नेत्र तिरछे करके देखने की आदत होती है। यदि वह उस आदत को छोड़ दे तो उस व्याधि से शीघ्र ही छुटकारा पा सकता है।

नेत्र के ज्ञान-तन्तुओं को बलवान बनाना भी इसका एक अच्छा उपाय है। इसलिए लम्बे श्वास-प्रश्वास वाले प्राणायामों का अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि उससे ज्ञान-तन्तुओं को अपेक्षित बल मिलता है। ऐसे प्राणायामों की विधियाँ इस पुस्तक में यथास्थान लिखी गई हैं।

भेंगापन दूर करने का एक उपाय

चश्मे के फ्रेम में बिना नम्बर का काँच लगवाकर उसके बीच का भाग सफेद रहने दें और चारों ओर काली वार्निश से पेंट कर दें। इस चश्मे को आँखों पर चढ़ाकर बीच के भाग से ही देखने का काम लें। इस विधि से तिरछे देखने के आदत छूटकर सीधे देखने की आदत पड़ जायगी।

अथवा चश्मे के फ्रेम में काँच के स्थान पर बसली के टुकड़े भी लगाये जा सकते हैं। उन टुकड़ों के बीच में छोटा-सा ऐसा छेद कर लें, जिसमें से ठीक प्रकार से देखा जा सके।

अंगुली या पेंसिल से देखने का अभ्यास

यह अभ्यास भेंगेपन को दूर करने में अधिक उपयोगी है। इसे दांये

हाथ की तर्जनी अँगुली अथवा पेंसिल के द्वारा सरलता से कर सकते हैं। अँगुली या पेंसिल के सिरे को नासिका के अगले भाग पर रखें और उसे दोनों नेत्रों से देखने का अभ्यास करें। अब उस सिरे को नाक से दाँयी कनपटी की ओर करके दोनों नेत्रों से देखें। फिर भौंहों के मध्य में उस सिरे को रखकर देखें तथा वहाँ से बाँयी कनपटी पर रखकर देखें।

इस प्रकार पहले दाँयी कनपटी से और दूसरी बार बाँयी कनपटी से सिरे को देखने का चक्र आरम्भ करके पूरा करना उचित है। यह क्रिया नेत्र की नस-नाड़ियों को सीधी करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है। इसमें देखने की जो क्रिया की जाय, वह बार-बार पलक झपकाते हुए करनी चाहिए।

भेंगेपन को दूर करने के लिए आँखों को विश्राम देना भी बहुत आवश्यक है। आँखों को ठन्डे पानी से धोना और पामिंग करना भी हितकर है। त्राठक क्रिया के अभ्यास से भी इस रोग में शीघ्र लाभ हो सकता है।

मोतियाबिन्दु में लेंस की पारदर्शकता का ह्रास

आधुनिक नेत्र विशेषज्ञ मोतियाबिन्दु (कैटेरेक्ट) के तीन प्रकार मानते हैं—(१) बाल्यावस्था का मोतियाबिन्दु (अर्ली कैटेरेक्ट), (२) वृद्धावस्था का मोतियाबिन्दु (ऑफ्टर कैटेरेक्ट), और किसी भी अवस्था में होने वाला मोतियाबिन्दु (ब्लेक कैटेरेक्ट) परन्तु यह रोग वृद्धावस्था में होता है तो अधिक दु:खदायी बन जाता है।

मोतियाबिन्दु में दृष्टि कमजोर होने का प्रमुख कारण लेंस का अपारदर्शक (ओपेक) हो जाना है। ज्यों ज्यों लेंस अपना पारदर्शकत्व छोड़ता जाता है, त्यों-त्यों दृष्टि मन्द होती जाती है और अन्त में वह बिल्कुल ही नष्ट होजाती है।

विशेषज्ञों का मत है कि देखने, पढ़ने या पलक झपकाने के गलत ढंगों के कारण ही नेत्रगत लेंस में अपारदर्शकता बढ़ती जाती है। कुछ का मत है कि अधिक शारीरिक और मानसिक परिश्रम में लेंस के अपारदर्शक बना देने में एक कारण होता है। कभी दृष्टिमांद्यता की आशंका भी लेंस की पारदर्शकता घटा देती है। यदि अपनी दृष्टि के कमजोर होने की याद आ जाती है तो भी मन में कुछ उद्विग्नता के भाव उत्पन्न होकर स्नायुओं में थकान उत्पन्न कर देते हैं।

आधुनिक चिकित्सक नेत्रों में पारदर्शकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से ऑपरेशन करके अपारदर्शक काँच को निकाल देना ही उचित समझते हैं। परन्तु ऐसा करने से रोगी को सम्पूर्ण स्वाभाविक दृष्टि की प्राप्ति हो जाती है, ऐसा सम्भव नहीं है। क्योंकि ऑपरेशन के बाद चश्मा लगाना आवश्यक होता है। वरन् कुछ रोगियों को तो समीप दृष्टि और निकट दृष्टि के पृथक-पृथक चश्मे लगाने होते हैं।

ऑपरेशन यदि ठीक नहीं होता अथवा किसी नादान चिकित्सक के द्वारा होता है तो उसके द्वारा रोगी की आँखें तक मारी जा सकती हैं। जबकि प्राकृतिक उपचारों से इसकी स्थायी रूप से सफल चिकित्सा सम्भव है। विशेषकर मोतियाबिन्दु की प्रारम्भिक अवस्था में तो किन्हीं आरामदायक व्यायामों के करने से बहुत कुछ लाभ हो सकता है। परन्तु उन व्यायामों का अभ्यास दीर्घकाल तक करना होता है।

आरामदायक व्यायाम अनेक प्रकार के हो सकते हैं, जैसे कि नेत्रों को बन्द करके शान्त मन से लेट जाना। अथवा आँखों को हथेलियों से ढक कर चित्त को विचार हीन बनाना और अन्धकार का अनुभव करना भी एक श्रेष्ठ व्यायाम ही है। यह व्यायाम केवल ५ मिनट तक करना पर्याप्त है और इसे एक-एक घन्टे के अन्तर से दुहराना चाहिए। ऐसा करने से लेंस की अपारदर्शकता स्वतः कम होने लगती है। यदि इसे

धैर्यपूर्वक किया जाय तो मोतियाबिन्दु प्रभृति रोग पूर्ण रूप से दूर हो सकते हैं।

नेत्रों को विश्राम देने के लिए स्मरण शक्ति या कल्पना शक्ति बढ़ाने वाला व्यायाम अथवा झूमने का व्यायाम करना भी अधिक हितकर होता है। इनकी विधियाँ इसी पुस्तक में यथास्थल लिखी गई हैं। यदि रोगी अधिक महीन अक्षरों की पुस्तक का अभ्यास करें तो भी मोतियाबिन्दु में कमी आ सकती है।

सबल आयु में दृष्टि की क्षीणता

आधुधिक चिकित्सक इस रोग को 'ग्लॉकोमा' कहते हैं। यह रोग भी वृद्धावस्था में ही दुःखमयी होता है। इसका आरम्भ तीव्र दर्द से होता है और शीघ्र ही आँखें मारी जाती हैं। इस रोग में नेत्रों में पानी भर जाने के कारण डेले में कठोरता आ जाती है। उसके कारण नेत्र धीरे-धीरे जड़ता को प्राप्त होते जाते हैं और दृष्टि क्षीण होती जाती है।

यह रोग प्रायः वृद्धावस्था में होता है। कुछ किशोर और युवा अवस्था वाले मनुष्य भी इससे प्रभावित होते देखे गये हैं। इस रोग की उत्पत्ति सामान्यतः उदर-विकार के कारण होती है। जो लोग टकटकी लगाकर देखने के आदी हैं, उनकी आँखों में गतिशीलता की न्यूनता उत्पन्न होने से भी यह रोग हो सकता है।

वृद्धावस्था में जब ज्ञानतन्तु शिथिल और दुर्बल हो जाते हैं, तब उनके नेत्रों पर सबल वायु का आक्रमण हो जाता है। जो लोग गैस के रोग से पीड़ित होते हैं, वे भी इससे प्रभावित होते देखे गये हैं। क्योंकि उदर से ऊपर को चढ़ती हुई गैस नेत्रगत नाड़ियों को प्रभावित करके अपने दबाव से आँखों में पानी भरने में सहायक होती है, जिसके फल स्वरूप सबल वायु का प्रकोप हो जाता है।

आँखों में पानी भरने पर उसके दबाव के कारण रक्त संचार की गति मन्द हो जाती है, इसलिए अक्षितन्त्र को अपेक्षित मात्रा में रक्त की

प्राप्ति नहीं हो पाती। साथ ही पानी के बाहर न निकलने के कारण उसका दबाव बढ़ता जाता है और तीव्र दर्द होने लगता है। कभी-कभी यह अकस्मात् उत्पन्न होता है और शीघ्र ही अन्धा बना देता है। रात्रि में अच्छे भले सोने वाले व्यक्ति भी प्रातःकाल तक अन्धत्व को प्राप्त होते देखे गये है।

इस रोग में भौंहों और कनपटियों में असह्य दर्द होता है, जिसे 'ग्लॉकोमा' का दर्द कहते हैं। इससे बचने के लिए आवश्यक है कि कब्ज न होने दिया जाय। पलकों को बार-बार झपकाने की क्रिया भी इसमें लाभकारी होती है। इस रोग के उत्पन्न होने पर झूमने का व्यायाम करना उचित होगा। जब दर्द होता हो, तब आँखों, भौंहों और कनपटियों को गर्म पानी से सेंक करने से लाभ हो सकता है।

छायापट का अभिष्यन्द

छायापट का निर्माण अत्यन्त महीन झिल्ली से होता है। इसमें विभिन्न कारणों से अनेक प्रकार की विकृतियाँ होजाती हैं। छायापट के अभिष्यन्द की उत्पत्ति किसी शारीरिक रोग विशेष से हो सकती है। मधुमेह या सुजाक भी इसमें कारण हो सकते हैं।

इस रोग में सामने की ओर देखने पर इधर-उधर की वस्तुएँ स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देतीं। एक वस्तु को देखते समय अन्य बस्तु की छाया दिखाई दे सकती है। प्रकाश की न्यूनाधिकता का ज्ञान नहीं रहता और चोंध की प्रतीति होती है तथा आँखों में बेचैनी का अनुभव होने लगता है तथा दिनोंदिन नेत्र की स्थिति गिरती जाती है।

इस रोग में रोगी के नेत्रों को पूर्ण विश्राम की आवश्यकता होती है। सूर्य चिकित्सा के पश्चात् नेत्रों को ठन्डे पानी से धोकर पामिंग की क्रिया की जाय। ठन्डी पट्टी या मिट्टी की पट्टी भी बहुत हितकर है। नेत्रों में शहद लगाने से भी बहुत लाभ होता है।

नेत्रों के समक्ष मक्खियां-सी उड़ना

यह रोग भी वर्तमान काल में वृद्धि पर है। किसी को मक्खी उड़ती दिखाई देती है तो किसी-किसी को चमकीले या काले धब्बे से दिखाई देते हैं। आँखों के सामने बालों का उड़ना दिखाई देता है, वह भी इसी का रूप है। संस्कृतज्ञों की भाषा में इसे 'केशकण्डुलम' कहते हैं।

इस रोग का प्रमुख कारण मलावरोध ही समझा जाता है। किसी के मत में यह रोग वृक्क की खराबी से होता है तो कोई-कोई इस रोग की उत्पत्ति का कारण विट्रियस में खराबी होना मानते हैं। परन्तु इसका सही कारण अभी तक अनिर्णित ही समझा जाता है।

इस रोग में प्रातःकालीन सूर्यकिरणों का बन्द नेत्रों पर ग्रहण किया जाना अधिक लाभदायक है। प्रातः सायं ठन्डे पानी से आँखों को धोवें तथा पामिंग की क्रिया करें। महीन अक्षरों को पढ़ना भी इसमें उपयोगी है। श्वेत वस्तुओं, मक्खियों या सफेद दीवार को देखने का प्रयत्न न किया जाय और न किसी वस्तु को टकटकी लगा कर देखा जाय। आँखों को बन्द करके हथेली से ढककर आराम देना भी हितकर है।

प्रातःकाल नेत्रों को वाष्प देना भी उपयोगी है। त्राटक का अभ्यास करने से भी इसमें लाभ होता है। कब्ज हो तो उसे दूर करने के लिए एनिमा लें और त्रिफला का भी सेवन करें।

अन्धापन और उसमें उपचार का निर्देश

नेत्रों का मारे जाना और उनसे कुछ भी दिखायी न देना अन्धापन है। इसी को पाश्चात्य चिकित्सक 'ब्लाइंडनैस' कहते हैं। आजकल यह रोग भी बढ़ता जा रहा।

इस रोग के भी अनेक कारण हैं—आहार-विहार का दोष, कब्ज, नेत्रों के रख-रखाव में उपेक्षा, शारीरिक निर्बलता, आघात और समय पर उपचार की कमी आदि से इसकी प्राप्ति होती है।

सामान्यतः इस रोग को चार प्रकारों में विभाजित कर सकते हैं—(१) रात्र्यान्ध्य, (२) दिवान्ध्य, (३) पूर्णान्ध्य, और (४) जन्मान्ध्य। प्रथम प्रकार के रोगी को रात्रि के समय दिखाई नहीं देता, इस रोग को रतौंधी भी कहते हैं। दूसरी प्रकार में दिन के समय दिखाई नहीं देता। तीसरे प्रकार में किसी भी समय दिखाई नहीं देता और चौथे प्रकार के रोगी को जन्म से ही दिखाई नहीं देता। यह चौथे प्रकार का जन्मान्ध्य पूर्ण रूप से अचिकित्सक (लाइलाज) होता है। जबकि प्रथम और द्वितीय प्रकार के रोग कठिनाई से साध्य हो जाते हैं और तीसरे प्रकार के रोग में भी लाभ होने की सम्भावना हो सकती है, किन्तु आरम्भ में अधिक और रोग पुराना होने पर बहुत कम।

फिर भी यह कहा जा सकता है कि प्रथम तीनों प्रकार के अन्धेपन की चिकित्सा हो सकती है। परन्तु कोई हथेली पर सरसों जमाना चाहे तो यह असम्भव है। रोग निवृत्ति के लिए धैर्य और विश्वास की बड़ी आवश्यकता होती है। ऐसे रोगियों को सर्व प्रथम अपने शारीरिक स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। उसके लिए आहार-विहार संयमित हो और कब्ज न होने पाये यह पहली आवश्यकता है।

उसके पश्चात् आंखों की सफाई की ओर ध्यान दें। नित्यप्रति प्रातः सायं समय आँखों को अवश्य धोवें और पामिंग आदि की क्रियायें करें। आँखों पर मिट्टी की पट्टी चढ़ाना, उन पर सूखी मालिश करना तथा नेत्रगत ज्ञान-तन्तुओं को पोषण देने वाले व्यायाम करना बहुत आवश्यक होता है।

आंखों को अधिक समय तक अन्धकार में रखने का व्यायाम करना इस रोग में अधिक हितकर होता है। चलने-फिरने में किसी अन्य व्यक्ति का सहारा लिये बिना ही काम लेने का प्रयत्न करें। यदि किसी अन्य रोग के उपसर्ग रूप में यह व्याधि प्राप्त हुई हो तो उस रोग की चिकित्सा करायें। इस रोग में सामान्यतः शहद का सेवन और अंजन दोनों ही

उचित हैं। साथ ही यदि त्रिफला का सेवन करें तो यह सभी प्रकार के नेत्र रोगों में लाभप्रद होता है।

आयुर्वेदानुसार नेत्र-रोग वर्णन

नेत्रों में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। आयुर्वेद ने चौरानवे रोगों का वर्णन किया है, जिनमें २४ प्रकारके वर्त्म अर्थात्पलकों के रोग कहे गये हैं। वे वर्त्म रोग कहे जाते हैं– कृच्छ्रोन्मीलन, पक्ष्मपात, कफोत्क्लिष्ट, लोहित, अरुनिमेष, रक्तोत्क्लिष्ट, कुकूणक, पक्ष्मार्श, पक्ष्मरोध पित्तोत्क्लिष्ट, पोथकी, श्लिष्टवर्त्मा, बहलवर्त्मा पक्ष्मोत्संग, अर्बुद, कुम्भिका, सिकतावर्त्म, लगण, अंजन नामिका, कर्दम, श्याववर्त्म, विसवर्त्म, अलजी और उत्क्लिष्टवर्त्म।

चौबीस प्रकार के पलक रोगों के अतिरिक्त नेत्र सन्धियों के ६, नेत्र के श्वेत भाग के १३, कृष्ण भाग ५, काचविन्दु ६, तिमिर रोग ६, लिंग नाश ७, दृष्टि रोग ८, अधिष्यन्द ४, अभिमन्थ ४ और सर्वाक्षि रोग ८ प्रकार के माने गये हैं।

रोगोत्पत्ति के कारण

शीर्षोपघाताद्विषतीक्ष्णसेवनान्
नेत्रान्तरे धूमरजोऽतिपातात्।
सूर्येक्षणात्सूक्ष्मनिरीक्षणा
मुहुर्दोषा रुजं संजनयन्ति नेत्रयोः ॥
शुक्रावरोधाद्युवतीप्रसङ्गाद्
धातोर्विकाराज्ज्वल नस्य तापात्।

नाड्यादिमोक्षाद् वहुमैथुनाच्च
नेत्रे रुजं संजनयन्ति दोषा: ।।

अर्थात्—सिर में चोट लगने, विष या कोई तीक्ष्ण वस्तु खाने, नेत्रों में धुँआ लगने, धूल घुसने, सूर्य की ओर देखने, वारम्बार सूक्ष्म वस्तुओं को तौर बांध कर देखने, शुक्र को रोकने तथा अधिक स्त्री-प्रसङ्ग करने आदि कारणों से कुपित हुए वातादि दोष नेत्र रोगों को उत्पन्न कर देते हैं।

२४ प्रकार के वर्त्म रोगों के लक्षण

(१) कृच्छ्रोन्मील नामक पलक-रोग में वातादि दोष कुपित होकर पलक को सकोड़ देते हैं, इस कारण रोगी देखने में समर्थ नहीं रहता। यह रोग कुंचन भी कहलाता है।

(२) पक्ष्मपात में पपोटे और पलकों में कुपित हुआ पित्त रोगों को गिराता तथा खुजली और जलन उत्पन्न कर देता है। कुछ विद्वान् इसे पश्मशात भी कहते हैं।

(३) कफोत्क्लिष्ट में कफ के प्रकोप से पलकों पर वाहर की ओर पीड़ा--रहित शोध रहती है तथा भीतर कीचड़ आदि के कारण आर्द्रता रहती है। यह रोग प्रक्लिन्नवर्त्म भी कहलाता है।

(४) लोहित में नेत्र के कोये में लम्वे, खुरदुरे, कठिन एवं कष्टदायक अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं। यह रोग शुक्रार्श भी कहलाता है।

(५) अरुंनिमेष में पलक में स्थित वात पलक गिराने वाली शिरा में प्रविष्ट होकर पलक को बार-बार खोलता बन्द करता है।

(६) रक्तोत्क्लिष्ट में रक्त विकार के कारण नेत्र के पपोटे के भीतर लाल वर्ण के कोमल अंकुर निकल आते हैं। यदि उन्हें काट दिया जाय तो वे पुन: बढ़ जाते हैं। यह रोग शोणितार्श भी कहलाता है।

(७) कुकूणक रोग बालकों को होता है, उनकी पलकोंमें कुथरू रोग

उत्पन्न होकर आँखों में खुजली कर देता है तथा आँखों से कीचड़ बहता है। उसके कारण बालक अपने मस्तक, नेत्र और नाक को रगड़ा करता है। वह न तो प्रकाश को देख सकता है और न नेत्र ही खोल सकता है।

(८) पक्ष्मार्श में ककड़ी के बीज के समान अल्पपीड़ा वाली, चिकनी चिकनी एवं खुरदुरी फुन्सियां पलकों के ऊपर उभर आती हैं। इस रोग को अर्शोवर्त्म भी कहते हैं।

(९) पक्ष्मरोध में खाज युक्त एवं अल्प पीड़ा और शोथ युक्त होने के कारण आखों का ठीक प्रकार से बन्द करना कठिन होता है। यह रोग वर्त्मबन्ध भी कहा जाता है।

(१०) पित्तोत्क्लिष्ट में वायु से चलायमान हुए पलकों के बाल नेत्रों में चले जाते हैं, इस कारण रोगी नेत्रों को बार-बार मीड़ता है, जिससे नेत्रों के काले भाग में या श्वेत भाग में शोथ उत्पन्न हो जाता है। किसी किसी की पलकों के बाल भी जड़ से उखड़ कर गिरने लगते हैं। इसे पक्ष्मकोप भी कहते हैं।

(११) पोथकी रोग में बरोनियों की जड़ में अति पीड़ा और खुजली युक्त लाल सरस के समान फुन्सियाँ होती हैं, जिनसे पानी समान स्राव होता रहता है।

(१२) श्लिष्टवर्त्म रोग में पलकों के कोए चिपक जाते हैं। यह रोग क्लिष्टवर्त्मा भी कहलाता है।

(१३) बहलवर्त्मा में पलकों पर पलकके रङ्ग की ही स्थिर फुन्सियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जिनसे पलक भर जाता है।

(१४) पक्ष्मोत्सङ्ग में बरोनियों के बाहर, भीतर की ओर मुखवाली लाल रङ्ग की ऊँची फुन्सी हो जाती है। वातादि दोषों के प्रकोप से उत्पन्न यह फुन्सी अत्यन्त खाज युक्त होती है, इसे उत्सङ्गपिडिका कहते हैं।

(१५) अर्बुद या वर्त्मार्बुद रोग में पलक के भीतर पीड़ा-रहित, टेढ़ी तथा लाल वर्ण की गांठ उत्पन्न होकर शीघ्र बढ़ जाती है।

(१६) कुम्भिका में बरौनी के किनारे पर फुन्सियां होकर फूलती, पकती और फूट कर बहने लगती हैं। यह फुन्सी बीज के समान चपटी होने के कारण ही कुम्भिका कहलाती है।

(१७) सिकतावर्त्म में पलकों के ऊपर अनेक फुन्सियों से घिरी हुई कुछ मोटी एवं खरखरी फुन्सियां हो जाती हैं। यह पलकों को दूषितकरने काली फुन्सियां वर्त्मशर्करा भी कहलाती हैं।

(१८) लगण रोग में पपोटे में पीड़ा युक्त, खाज युक्त, कड़ी और मोटी गाँठ उत्पन्न हो जाती है। वह चिकनी और बेर के तुल्य होती है तथा पकती नहीं।

(१९) अंजननामिका रोग में पलकों में दाह और सुई चुभने के समान पीड़ा युक्त, लाल, कोमल, छोटी तथा अल्प पीड़ा वाली फुन्सी उत्पन्न हो जाती है।

(२०) कर्दम या वर्त्मकर्दम रोग में पित्त के प्रकोप से रक्त जल जाता है, इस कारण पलक में दही या मक्खन के समान गीलापन उत्पन्न हो जाता है।

(२१) श्याववर्त्म में नेत्रों के पलक और कोए बाहर-भीतर से सूज कर काले हो जाते हैं तथा उनमें पीड़ा भी होती है।

(२२) विसवर्त्मा में वात, पित्त, कफ तीनों ही कुपित होकर पलकों पर सूजन और छोटे-छोटे छेद कर देते हैं तथा उनमें कमल की डण्डी के समान पानी सा बहने लगता है।

(२३) अलजी में रक्त के कोप से पलकों में ताम्र वर्ण की गोल-गोल छोटी फुन्सियों हो जाती हैं, जिनमें अत्यन्त पीड़ा होती है।

(२४) उत्क्लिष्टवर्त्म में नेत्र की सन्धि के कुछ हट जाने के कारण पलकों का खोलना-मूँदना असम्भव होकर उनमें निश्चेष्टता जैसी आ

जाती है। उसमें कभी पीड़ा होती और कभी नहीं होती। इस रोग को वातहतवर्त्म भी कहते हैं।

नेत्र सन्धिगत ९ रोग

नेत्र सन्धि में होने वाले ९ रोग माने जाते हैं– जलस्राव, कफस्राव, रक्तस्राव, पर्वणी, पूयस्राव, कृमिग्रन्थि, उपनाह, अलजी और पूयालस। इनमें स्राव रोग के चार भेद हैं। वातादि दोष कुपित होकर अश्रुमार्ग से सन्धियों में प्रविष्ट होकर अपने-अपने लक्षणों से युक्त स्राव रोग को उत्पन्न कर देते हैं। किसी-किसी आचार्य के मत में यह रोग 'नेत्रनाड़ी' है, जिसे नेत्र का नासूर कह सकते हैं। अत यहाँ नेत्र सन्धि के ९ रोग का विवेचन किया जाता है–

(१) जलस्राव रोगों में नेत्र-सन्धि से हरे, पीले और गर्म जल का स्राव होता है, इसे पित्तज जलस्राव भी कहते हैं।

(२) कफस्राव रोग में नेत्र-सन्धि से पीड़ा-रहित, श्वेत, गाढ़ी और चिकना पीव स्राव होता है, यह कफज होता है।

(३) रक्तस्राव रोग की उत्पत्ति रक्त-दोष से होती है। इसमें नेत्र सन्धि से गर्म-गर्म रक्त का स्राव होता है।

(४) पर्वणी रोग में नेत्र के काले अथवा श्वेत भाग की सन्धि में रक्त के कुपित होने से ताम्रवर्ण की, दाह, शूल एवं शोध युक्त छोटी गोल फुन्सी होती है।

(५) पूयस्राव में नेत्र की सन्धि पक कर उससे पीव बहने लगता है। इस रोग में नेत्र के शुक्ल भाग की सन्धि में और पलकों की सन्धि में कीड़े उत्पन्न होकर पलकों में खाज उत्पन्न कर देते हैं। वे कीड़े अनेक रूप वाले होते हुए नेत्रों को दूषित किये रहते हैं।

(७) उपनाह रोग में नेत्र-सन्धि में बड़ी गांठ उत्पन्न हो जाती हैं, किन्तु उसमें पीड़ा या पकाव न होकर खुजली चलती है।

(८) अलजी रोग में नेत्र के शुक्ल और श्वेत भाग की सन्धि में ताम्रवर्ण की, दाह, शूल, शोध युक्त गोल और बड़ी फुन्सी हो जाती है।

(९) पूयालस रोग में नेत्र की सन्धि में शोथ होकर पकाव के साथ सुई चुभने जैसी पीड़ा हो जाती है।

नेत्र के श्वेत भाग के १३ रोग

नेत्र के श्वेत भाग में १३ प्रकार के रोग होते हैं—शिरोत्पात, शिरा हर्ष, शिराजाल, शुक्तिका, शुक्लार्म, अधिमांसार्म, प्रस्तार्यर्म, पिष्टक, शिराजपिटिका, कफग्रन्थित, अर्जुन, स्नाय्वर्म और अधिमांस, इनके लक्षण निम्न प्रकार हैं–

(१) शिरोत्पात रोग में नेत्र की नसें पीड़ा-युक्त अथवा पीड़ा-रहित रहती हुई ताम्रवर्ण की और फिर अत्यन्त लाल हो जाती हैं।

(२) शिरोत्पात रोग के उपचार में उपेक्षा करने से उसमें वृद्धि होकर शिराहर्ष रोग हो जाता है। इसमें ताम्रवर्ण के गाढ़े-गाढ़े आंसू गिरने लग जाते हैं। उससे कुछ भी दिखाई नहीं देता।

(३) शिराजाल रोग में नेत्र के श्वेत भाग में नसों का जाल सा बन कर अत्यन्त तन जाता है और उसका रङ्ग लाल होता है।

(४) शुक्तिका रोग में सीप के आकार की काली और मांस के रङ्ग की बूँदें नेत्र के शुक्ल भाग में उत्पन्न हो जाती हैं।

(५) शुक्लार्म रोग में शुक्ल वर्ण का कोमल मसा नेत्र के श्वेत भाग में शीघ्रता से बढ़ आता है।

(६) अधिमांसार्म में श्वेत भाग में ही जो मसा उत्पन्न होकर कलेजे के वर्ण का कुछ लाल और काला मिश्रित, चौड़ा, मोटा किन्तु कोमल होता है, वही अधिमांसार्म कहलाता है।

(७ प्रस्तार्यर्म में नेत्र के श्वेत भाग में पतला, लम्बा, श्याम अथवा लाल वर्ण का कुछ श्वेतता युक्त मसा या मांस बढ़ जाता है।

(८) पिष्टक की उत्पत्ति कफ और वात के प्रकोप से होती है। इसमें पीठा के समान ऊँचा माँस उत्पन्न होता है। उसका वर्ण प्रायः मैले दर्पण के समान होता है।

(९) शिराजपिडिका में नेत्र के काले भाग के निकट श्वेत भाग में शिराओं से घिरी हुई काली फुन्सियां उत्पन्न हो जातीहैं।

नेत्र के कृष्ण भाग के ५ रोग

नेत्र के काले भाग में पाँच प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं—

शुद्धशुक्र शिराशुक्र क्षयशुक्र, अजका और शिरासङ्ग। इनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है—

(१) शुद्धशुक्र में नेत्र के काले भाग में अभिष्यन्द से उत्पन्न फूले में कुछ पीड़ा उत्पन्न हो जाती है तथा उसका वर्ण शङ्ख, चन्द्रमा या कुन्द के समान श्वेत होता है और बादल के समान सजल एवं पतला, किन्तु उसमें किसी प्रकार का घाव नहीं होता। इसे साध्यशुक्र भी कहते हैं।

(२) शिराशुक्र की उत्पत्ति का कारण उक्त रोग का बढ़ जाना ही है। जब शुद्धशुक्र रोग बहुत दिनों का होकर और बढ़ कर बहुत गहरे में दूसरे या तीसरे पर्त में पहुंच जाता है, तब कष्ट साध्य हो जाता है। वही अव्रण शुक्र अथवा फुली जब बढ़े हुए मांस से घिर जाती है या उसका मध्य भाग कुछ खाली रहता है, तब वह चलती रहती अथवा देखने वाली नसों में छिदी रहती है, इस कारण दिखाई नहीं देता। जिस फुली वाले रोगी के गर्म आंसू गिरें नेत्र में फुन्सी हो, फुली का आकार मूंग प्रमाण हो, दूसरे पर्त में हो अथवा तिमिर के पङ्क की हो, उसे असाध्य समझते हैं।

(३) क्षतशुक्र रोग में नेत्र के काले भाग में लाल रङ्ग की फुली उत्पन्न होकर काले भाग में ही डूबी रहती तथा बिंधी हुई सी प्रतीत होती है, उससे अत्यन्त गर्म स्राव होता है।

(४) अजका रोग में नेत्र के काले भाग में बकरी की मेंगनी के समान वेदना युक्त एवं रक्त वर्ण की फुली उत्पन्न हो जाती है। उसमें से लाल रङ्ग के चिकने आंसू गिरने लगते हैं और काले भाग में वह फुली फैल कर ऊंची हो जाती है। यह तीसरे पटल में होती है। इसके कारण मेद बढ़ कर ऊंचा हो जाता है।

(५) शिरासङ्ग में वातादि के कोप से नेत्र के काले भाग पर श्वेतता छा जाती है और काला भाग दिखाई नहीं देता ; यह रोग सन्निपात से उत्पन्न होता तथा असाध्य माना जाता है।

छः प्रकार के काचविन्दु रोग

इस रोग के ६ प्रकार माने गये हैं— वातजन्य, पित्तजन्य, कफ-जन्य, सन्निपात जन्य, रक्तजन्य और संसर्ग जन्य। इनके लक्षण निम्न प्रकार हैं—

(१) वातजन्य काच विन्दु रोग में सभी रूप धुंधले, मटमैले और घूमते हुये, टेढ़े से तथा अरुणिमा युक्त दिखाई देते हैं।

(२) पित्तजन्य काच विन्दु रोग में सूर्य, खद्योत, इन्द्रधनुष, विद्युत और मोर आदि नाचते हुये एवं नीले पदार्थ दिखाई देते हैं।

(३) कफ जन्य काचविन्दु रोग में रोगी को चिपकने, उजले और जल में डूबे हुये के समान तथा जड़ता युक्त रूप दिखाई देते हैं।

(४) सन्निपात जन्य काचविन्दु रोग में एक ही पदार्थ के अनेक रूप दिखाई देते हैं अथवा एक पदार्थ के दो रूप या वस्तुयें चित्र-विचित्र एवं उछलती हुई सी प्रतीत होती हैं। अथवा कोई रूप ही नांग और कोई रूप अधिकांश दिखाई देता है।

(५) रक्तजन्य काचविन्दु रोग में लाल लाल एवं विविध प्रकार के काले पदार्थ सफेदी लिये हुये काले या पीले रूप दिखाई देते हैं।

(६) संसर्गजन्य काचविन्दु रोग की उत्पत्ति रक्त में पित्त के तेज

में मिलने से परिम्लायि नामक रोग के रूप में होती है। इसमें रोगी को सभी दिशायें, खद्योत और सूर्य आदि पीले रङ्ग के दिखाई देते हैं तथा सभी वृक्ष तेजोमय और जुगनियों से युक्त प्रतीत होते हैं।

तिमिर रोगों के छः प्रकार

यह रोग भी ६ प्रकार का ही है— वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, और संसर्गज। वस्तुतः तिमिर रोग के ठीक न होने पर ही काचविन्दु रोग होता है। शास्त्र का मत है—

तिमिरं रागतां याति रागः काचत्वमेव च।
काचात् संजायते नीली तदान्धो जायते नरः॥

अर्थात्—तिमिर रोग रागता को प्राप्त हो जाता है तो राग से काचविन्दु रोग होता है। उस काचविन्दु रोग से नीली उत्पन्न होकर मनुष्य को अन्धा बना देती है।

वही लिंगनाश नीलिका काचविन्दु रोग कहलाती है, इसलिये काचविन्दु रोग में वातादि के भेद से जो लक्षण बताये गये हैं, वही इस रोग में समझने चाहिए। पटलगत रोगों के लक्षण निम्न प्रकार हैं—

तिमिर रोग जब प्रथम पटल में होता है, तब रूप साफ दिखाई न देकर वातादि दोषों के अनुसार दिखाई देता है। वात से गुलाबी, पित्त से मलीन और नीला, कफ से श्वेत, रक्त से लाल तथा सन्निपात से विचित्र रङ्ग दिखाई देते हैं।

जब तिमिर रोग द्वितीय पटल में जा पहुंचता है, तब दृष्टि विह्वल हो जाती है। रोगी को मक्खी, मच्छर, बाल, जाली, मण्डल, पताका, किरण, कुण्डल, अनेक चलायमान पदार्थ, वर्षा तथा बादल आदि दिखाई देने लगते हैं। दूर के पदार्थ निकट तथा निकट के पदार्थ दूर दिखाई देते हैं।

जब रोग तीसरे पटल में पहुँच जाता है। तब नीचे पदार्थ दिखाई

नहीं देते, ऊपर के ही दिखाई देते हैं। तथा रोगी सभी को नाक, कान और नेत्र से रहित देखता है। नेत्र का जो भाग रोग से प्रभावित होता है। उसके भाग से दिखाई नहीं देता और एक रूप से दो रूप दिखाई देते हैं।

जब चौथे पटल में रोग पहुँच जाता है, तब रोगी की दृष्टि से सब ओर से रुक जाती है। इसके पश्चात् लिंगनाश की उत्पत्ति हो जाती है, जिसका विवेचन नीचे किया जाता है—

लिंगनाश रोग के ७ प्रकार

तिमिर रोग के चौथे पटल में पहुंचने पर लिङ्गनाश रोग होता है, जिसके ७ प्रकार माने जाते हैं— वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, सन्निपात जन्य, उपसर्ग जन्य, संसर्गजन्य और रक्त जन्य। यदि लिङ्गनाश अधिक बढ़ा हुआ नहीं होता तो सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और विद्युतादि निर्मल एवं तैलमय प्रकाश से युक्त दिखाई देते हैं। यही लिङ्गनाश रोग नीलिका और काचबिन्दु रोग का रूप धारण कर लेता हैं। लिङ्गनाश रोग के दोष भेद से लक्षण यहां बताते हैं—

(१) वातज लिङ्गनाश में नेत्र-मण्डल चञ्चल, खुरदरा और लाल दिखाई देता हैं।

(२) पित्तज लिङ्गनाश में नेत्र-मण्डल नीला, कांसी जैसे वर्ण का तथा पीला दिखाई देता है।

(३) कफज लिङ्गनाश में नेत्र का श्वेत मण्डल बहुत चिकना, शङ्ख, कुन्द या चन्द्रमा के समान दिखाई देता तथा नेत्रों को मीड़ने पर वह मण्डल चञ्चल कमल पर स्थित जल बिन्दु के समान उधर-उधर घूमने लगता है।

(४) सन्निपातज लिङ्गनाश में दृष्टि का रङ्ग अनेक प्रकार का दिखाई देने लगता है।

(५) उपसर्गज लिङ्गनाश के दो भेद माने जाते हैं— निमित्तज

और अनिमित्तज। निमित्तज में विष-वृक्ष के फल-फूल की गन्ध लगाने या ऐसे ही अन्य कारणों से शिर में तीव्र दर्द और दाह उत्पन्न हो जाताऔर नेत्र को आघात लगने से दृष्टि नष्ट हो जाती है। इसमें रक्ताभिष्यन्द के समान लक्षण होते हैं।

अनिमित्तज की उत्पत्ति देव, ऋषि, गन्धर्व, महासर्प और सूर्य की ओर टकटकी लगाकर देखने से होती है। इन कारणों से रोगी की दृष्टि नष्ट हो जाती है, किन्तु नेत्र स्वच्छ दिखाई देते हैं।

(६) संसर्गज लिंगनाश रोग में मोटे कांच की ललोंई के समान लाल, मटमैला अथवा नीला मण्डल दिखाई देता है।

(७) रक्तज लिङ्गनाश में मूँगा या लाल कमल के पत्ते के समान मण्डल दिखाई देता है।

दृष्टि रोग के ८ प्रकार

आचार्यों ने दृष्टि रोग के आठ भेद माने हैं—पित्तविदग्ध, अम्लपित्त विदग्ध, उष्ण विदग्ध, नकुलान्ध्य, धूसरान्ध्य, रात्र्यान्ध्या, ह्रस्व दृष्टि और गम्भीर दृष्टि। सुश्रूत के अनुसार 'मसूरदलमात्रं तु पञ्चभूत प्रसादजम्' अर्थात् 'पञ्चभूतों के प्रसाद (गड़बड़ी से मसूर की दाल के समान दृष्टि हो जाती है, उसी में यह विकार उत्पन्न होते हैं—

(१) पित्तविदग्ध दृष्टि पित्त दोष से होती है। इसमें दृष्टि पीली हो जाती है, इस कारण रोगी सभी कुछ पीला देखता है।

(२) अम्लपित्त विदग्ध दृष्टि में वमन होने से दृष्टि नष्ट हो जाती है और वमन का कारण कफ का प्रकोप है। इसलिए इस रोग को कफ-विदग्ध दृष्टि भी कहा जाता है और इस रोग में सभी रूप सफेद वर्ण के दिखाई देते हैं।

(३) उष्णविदग्ध दृष्टि का कारण रोग का तृतीय पटल में पहुँच जाना है। उससे दिन में दिखाई देता, किन्तु रात्रि में सब कुछ दिखाई

देता है। क्योंकि रात्रि में पित्त की कमी होने से दृष्टिमें शीतलता उत्पन्न हो जाती है, जो कि दर्शन शक्ति को स्वाभाविक कर देती है।

(४) नकुलान्ध्य दृष्टि में वातादि दोषों के प्रकोप से नेवले जैसी दृष्टि होकर दिन में चित्र-विचित्र रूप दिखाई देते हैं।

(५) धूसरान्ध्य दृष्टि के कारण शोक, ज्वर, परिश्रम एवं शिरः-ताप आदि हो सकते हैं। इसमें रोगी को सब कुछ धुंधला दिखाई देता है। इसे धूम्र-दर्शन भी कहते हैं।

(६) रात्र्यान्ध्य दृष्टि दोष के तीनों पटलों में पहुंचने से उत्पन्न होती है। इसमें रात्रि के समय दिखाई नहीं देता, किन्तु दिन में सूर्य के ताप के कारण कफ कम हो जाता है, इसलिए सब कुछ सहज रूप से दिखाई देता है। इसे बोलचाल की भाषा में 'रतौंधी' कहते हैं।

(७) ह्रस्व दृष्टि अर्थात् कम दृष्टि वाले को दिन के समय सभी रूप छोटे और कठिनता से दिखाई देते हैं।

(८) गम्भीर दृष्टि का कारण वात का प्रकोप समझा जाता है। इसमें दृष्टि खराब होकर भीतर की ओर सिकुड़ जाती है, जिससे घोर पीड़ा होती है।

अभिष्यन्द रोग के ४ प्रकार

अभिष्यन्द रोग के ४ प्रकार माने गये हैं— रक्ताभिष्यन्द, वाताभिष्यन्द, पित्ताभिष्यन्द और कफाभिष्यन्द। आँख आना, आंख उठना या आंख दुखना इसी को कहते हैं। प्रायः सभी प्रकार के नेत्र दोषों का आरम्भ इसी से होता है। इसके लक्षण बताते हैं—

(१) रक्ताभिष्यन्द में नेत्र दुखने लगते है, ललोंई युक्त आंसू निकलते हैं तथा नेत्र और पलकें भी लाल हो जाते हैं। सामान्यतः इसमें पित्ताभिष्यन्द जैसे लक्षण होते हैं।

(२) वाताभिष्यन्द में आँख आकर सुई चुभने जैसी वेदना होती

है। आँखों में भारीपन, रोम हर्ष, कंकड़ से चुभना, रूखापन, नयनों में शुष्कता तथा शिर दर्द होता है। आंखों से ठण्डे आंसू निकलते हैं।

(३) पित्ताभिष्यन्द में जलन और पकाव होता है। ठण्डी वस्तु लगने से चैन मालुम होता है। नेत्रों में शोध नहीं होती, परन्तु धुंआ सा निकलता है। गर्म आंसू निकलते और नेत्र पीले हो जाते हैं।

(४) कफाभिष्यन्द में गर्म वस्तु लगने से चैन प्रतीत होता है। आंखों में भारीपन, सूजन तथा खुजली आती है। चटचटाहट जैसी होती और नेत्र ठण्डे रहते हैं तथा नेत्रों से चिकना पानी वहता है।

अधिमन्थ के ४ प्रकार

अभिमन्थ रोग के ४ प्रकार माने जाते हैं— वातज, पित्तज, कफज और रक्तज। जब अभिष्यन्द रोग के उपचार में उपेक्षा की जाती है, तब अधिमन्ध रोग हो जाता है। इस रोग के कारण नेत्रों में अत्यन्त पीड़ा होती है। नेत्र फटते से प्रतीत होते हैं और ऐसा लगता है, जैसे कोई मथ रहा है। इसमें आधे शिर में दर्द हुआ करता है। शेष सभी लक्षण अभिष्यन्द के समान होते हैं।

इस रोग को दृष्टि नाशक मानते हैं। यदि कफज अधिमन्थ तीव्र होता है तो ७ दिन में दृष्टि हर लेता है। रक्तज अधिमन्थ ५ दिन में वातज ६ दिन में और पित्तज अधिमन्थ शीघ्र ही दृष्टि को नष्ट कर डालता है। इसलिए अभिष्यन्द रोग को ही नहीं बढ़ने देना चाहिए।

सर्वाक्षि रोग के ८ प्रकार

सर्वाक्षि रोग का अभिप्राय नेत्र के सभी भागों में उत्पन्न होने वाले रोग से है। इसके ८ भेद मानते हैं—वातविपर्यय, अल्प शोध, अन्यतो-वात, पाकात्यय, शुष्काक्षि पाक, शोफ, अध्युषित और हताधिमन्थ। इनके लक्षण इस प्रकार हैं—

(१) वात विपर्यय में कभी भौंहों में भी कभी आँखो में बार-बार अनेक प्रकार की तीव्र पीड़ायें होती है।

(२) अल्पशोध में नेत्र पाक होता हैं। उसमें खुजली, अश्रुपात आदि लक्षण होते हैं। आँखें गूलर के फूल के समान लाल हो जाती हैं, परन्तु शोध नहीं होता।

(३) अन्यतोवात में पलक, कान, शिर और ठोड़ी में अथवा ग्रीवा के ऊपर की नसों या अन्य स्थानों में पहुँचा हुआ वायु भौंहों और नेत्रों में पीड़ा उत्पन्न कर देता है।

(४) पाकात्यय में सफेद फूली से नेत्र का कृष्ण मण्डल ढक जाता तथा ऊपर की ओर उठा हुआ जान पड़ता है। उससे घोर कष्टकारी पीड़ा उत्पन्न हो जाती है।

(५) शुष्काक्षिपाक में नेत्र नहीं खुल पाते और पलकें कठिन तथा रूखी हो जाती हैं। जलन होती है और ठीक प्रकार दिखाई नहीं देता। इस रोग में आँखें खोलने में बड़ा कष्ट होता है।

(६) शोफ रोग में आँखों में खुजली, सूजन, पानी बहना, पके गूलर के समान लीली और तीव्र नेत्र पाक होता है।

(७) अध्युषित रोग में नेत्र का मध्य भाग काला और चारों ओर का लाल होता है। नेत्र पाक, दाह, शोध तथा अश्रुपात आदि लक्षण होते हैं।

(८) हताभिमन्थ में नेत्रों में अत्यन्त तीव्र असह्य पीड़ा होती है। यह रोग वातज अधिमन्थ की अपेक्षा करने से हठात् उत्पन्न हो जाता है। इसे आचार्यों ने असाध्य माना है।

नेत्र रोगों की आयुर्वेदिक चिकित्सा

शरीर-शोधन और धातु-शोधन

नेत्र रोग में सर्व प्रथम शरीर-शोधन और धातु-शोधन आवश्यक होता है। आयुर्वेद का मत है—

लंघनालेपनस्वेद शिराव्यध विरेचनैः।
उपाचरेदभिष्यन्दानंजनाश्च्योतनादिभिः ॥

अर्थात्—अभिष्यन्द रोग की चिकित्सा लंघन, लेप, स्वेदन, शिरावेधन, विरेचन, अंजन और आश्च्योतन आदि के द्वारा करनी चाहिए।

लंघन अथवा उपवास अनेक रोगो के स्थायी रूप से निवारण का एक प्रबल उपाय है। इसके करने से सामान्यतः सभी दोष निर्बल हो जाते हैं, इस कारण किसी भी रोग की निवृत्ति में इसका आश्रय लेना उचित होता है। विशेष कर नेत्र रोग, कुक्षिरोग, प्रतिश्याय, व्रण और ज्वर इन पांच प्रकार की व्याधियों में तो इस साधन से शीघ्र ही शान्ति मिलती है।

नेत्र रोग का परिपाक होना भी आवश्यक समझा जाता है और उसके लिए स्वेदन, लेपन, तिक्त अन्न सेवन अथवा लंघन तथा सेंक करना आदि क्रियाओं से चार दिनों में ही नेत्र-दोष पक जाते हैं। इसलिए इन क्रियाओं को अवश्य करें। परन्तु जब तक नेत्र-दोष कच्चे रहें तब तक अंजन, आश्च्योतन और क्वाथादि का सेवन उचित नहीं होता।

अप्रकट नेत्र रोग पर सेंक

यदि नेत्र रोग प्रकट न हुआ हो, किन्तु उसकी शंका हो अथवा आरम्भ ही हुआ हो और परिपाक न हुआ हो तो गन्धा बिरोजा, अतीस

और लोध तथा थोड़े से सेंधे नमक को लेकर चूर्ण करें और किसी वस्त्र में बाँधकर पोटली बनालें। इसे रोगी अपने नेत्र बन्द करके बाहर पलकों पर फेरे।

नेत्र दुखने (अभिष्यन्द) में

(१) आमले का स्वरस निकाल कर छान लें और ३-४ बूंद की मात्रा में प्रत्येक आँख में डालें तो दर्द आदि में लाभ सम्भव है।

(२) सहजने का स्वरस, शहद और थोड़ा सा सेंधा नमक मिलाकर घोल बनावें और आंखों में डालें।

(३) दारुहल्दी और रसोत को खूब महीन पीसकर स्त्री के दूध में मिलावें और छानकर आँखों में डालें तो अभिष्यन्द के कारण उत्पन्न दाद, दर्द और आँसू गिरने में लाभ होता है।

(४) कनेर के नये कोमल पत्रों का रस निकाल कर आँखों में डालें तो अभिष्यन्द में शीघ्र लाभ होता है।

(५) लटजीरे की जड़ और थोड़ा-सा सेंधा नमक ताम्रपात्र में डाल कर दही के तोड़ के साथ घिस कर छान लें। इसे आँखों में डालने से नया नेत्र-रोग शान्त हो जाता है।

(६) गोंदी की पत्तियाँ पीसकर उनका रस टपकाने से गर्मी से आई हुई आँख में लाभ होता है।

(७) ग्वारपाठे का रस निकाल कर रात्रि में सोते समय नेत्रों में टपकावें तो दुखने आई आँखों में लाभ सम्भव है।

(८) हल्दी को पानी के साथ पीस कर छान लें और जिस आँख में दर्द हो उसके दूसरी ओर के कान में टपकावें तो नेत्राभिष्यन्द में शीघ्र लाभ होता है।

नेत्र रोगों में लेपों के नुस्खे

(१) सेंधानमक, दारुहल्दी, गेरू, हरड़ और रसौत समान भाग लेकर

जल के साथ पीसें और नेत्रों के बाहर लेप कर दें। इससे सब प्रकार के नेत्र रोगों में लाभ होता है।

(२) श्वेत लोध को घृत के साथ भूनकर विडालक संज्ञक लेप करने से नेत्र रोगों में शीघ्र लाभ होता है। विडालक का अभिप्राय नेत्रों के बाहर चारों ओर लेप करना है।

(३) हरड़ को घी के साथ भूनकर विडालक संज्ञक लेप करना भी हितकर होता है।

(४) गेरू, लाल चन्दन, सोंठ, खड़िया और बच का आँखों के बाहर चारों ओर लेप करें तो भी आँखें रोग-रहित हो जाती हैं।

(५) भूमि आमले की जड़ और सेंधानमक ताम्रपात्र में डालकर काँजी के साथ घिसें और आँखों के बाहर गाढ़ा-गाढ़ा लेप कर दें तो आँखों की पीड़ा का शमन होता है।

(६) पीली हरड़, छोटी हरड़, गेरू और रसौत पानी के साथ घिस कर आँखों के चारों और लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

(७) नीबू का रस लोहे के पात्र में डाल कर लोहे की ही मूसली से घोटें। जब वह काला पड़ जाये तब आँखों के चारों ओर लेप करें।

(८) अमचूर को लोहे के पात्र में डाल कर लोहे की मूसली से जल के साथ घोटें और आँख के चारों ओर लेप कर दें।

(९) नीम की पत्ती और सोंठ समान भाग को जल योग से पीसकर नेत्र के चारों ओर लेप करें।

(१०) लोध और आमला समान भाग लेकर गाय के घी में भूनें और आँख के बाहर चारों ओर लेप करें।

(११) रसौत, सोंठ, कालीमिर्च और पिप्पली समभाग को जल के साथ पीसकर लेप करने से खाज, पाक युक्त अंजन नाम की पलक पर होने वाली फुन्सी दूर होती है।

(१२) छोटी हरड़ को पानी से साथ घिसकर गुहेरी पर लेप करें तो शीघ्र लाभ होता है।

अभिष्यन्द में आश्च्योतन प्रयोग

आश्च्योतन का अभिप्राय है—किसी क्वाथ, दूध, द्रव स्नेह की बूँदों को गिराना अथवा टपकाना। इससे अभिष्यन्द प्रभृति रोग की शान्ति में पूर्ण सहायता मिलती है। प्रयोग निम्न प्रकार हैं—

(१) मुनक्का, मुलहठी, मंजीठ और जीवनारायण की सभी औषधियों से सिद्ध हुए दूध का प्रातःकाल आश्च्योतन करें तो नेत्र शोथ, शूल तथा अन्यान्य नेत्र रोग दूर होते हैं।

(२) लोध के चूर्ण अथवा कल्क को पिसे हुए नीम के पत्तों के गोले में रख कर अग्नि पर पकावें और फिर निकाल कर स्त्री के दूध में मिलावें और कपड़े से छान कर उसकी बूँदे नेत्रों में टपकावें। इससे वातज, पित्तज और रक्तज अभिष्यन्द दूर हो जाते हैं।

(३) सेंधानमक और लोध को घृत के साथ भूनकर काँजी के साथ पीसें और श्वेत वस्त्र में बाँधकर आँखों में निचोड़ें तो खुजली, दाह और पीड़ा नष्ट होती है।

(४) कसेरू और मुलहठी के चूर्ण को कपड़े की पोटली में बाँधकर वर्षा के पानी में रखें। फिर इस पानी का आश्च्योतन करने (नेत्र में टपकाने) से अभिष्यन्द में लाभ होता है।

(५) लोध, त्रिफला, मुलहठी, खाँड़ और नागरमोथा को समान भाग में लेकर पीसें और ठन्डे पानी में मिलाकर आँखों में टपकावें। यह रक्ताभिष्यन्द में लाभकारी है।

(६) बिहीदाने का लुआब कन्यावती स्त्री के दूध में मिलावें और साथ ही धनिये के पत्तों के अर्क को भी मिलाकर छानें और आँख में टपकावें तो नेत्र-पीड़ा, शोथ और लाली में लाभ होता है।

(७) हल्दी, फिटकरी, इमली की पत्तियाँ और सिरस की पत्तियाँ पानी के साथ पीसें और छानकर आँखों में टपकावें। इससे आँखों के दर्द लाली आदि में लाभ होता है।

(८) कर्पूर ३ भाग और लोध १ भाग जल के साथ पीसकर आँखों में टपकाने से अभिष्यन्द रोग का शमन होता है।

(९) अफीम के भाग, फुलाई हुई फिटकरी २ भाग और इमली की पत्तियां १० भाग जल योग से पीसकर आँखों में टपकावें। इससे भी सब प्रकार के अभिष्यन्द में लाभ होता है।

(१०) श्वेत फिटकरी का फूला, और अफीम गुलावजल के साथ घोट-छान कर आँखों में टपकाने से सर्दी से आई हुई आँख में शीघ्र लाभ हो सकता है।

(११) यदि आँख गर्मी से आई हो तो केवल गुलाबजल अथवा गुलाबजल से कर्पूर मिलाकर टपकावें तो शीघ्र लाभ होता है।

(१२) प्याज का रस और शहद मिलाकर आँखों में टपकावें तो भी सब प्रकार के अभिष्यन्द, दर्द, लाली आदि में शीघ्र लाभ हो सकता है।

(१३) बिल्वादि पंचमूल के क्वाथ की कुछ गर्म (गुनगुनी) सुहाती हुई बूँदें आँखों में टपकाने से वातज अभिष्यन्द में लाभ होता है। परन्तु ध्यान रहे कि क्वाथ की बूँदें अमिक गर्म नहीं होनी चाहिए।

(१४) एरण्डमूल, बड़ी कटेरी, जयन्ती और लाल सहजने की जड़ का काढ़ा बनाकर सुहाता-सुहाता गर्म टपकाना चाहिए। इससे भी वातज अभिष्यन्द में लाभ होता है।

(१५) अथवा नं० १ और २ दोनों ही द्रव्यों के सम्मिलित क्वाथ की गर्म बूँदें टपकाना अधिक हितकर है।

(१६) एरण्ड के पत्र, मूल और छाल तथा कटेरी की जड़ को बकरी के दूध में पकाकर उसकी सुहाती हुई गर्म बूँदें आँखों में टपकावें तो अभिष्यन्द रोग में शीघ्र लाभ होता है।

(१७) पौण्डरीक, मुलहठी, हल्दी, आमला और पद्माख समान भाग के काढ़े में शहद मिलाकर ठण्डा होने पर आश्च्योतन करें तो पित्तज नेत्र रोग नष्ट होते हैं।

अंजन के प्रयोग

अंजनादि के प्रयोग तब किये जाने चाहिए जबकि नेत्र दोष ठीक प्रकार से पक जाँय। जब नेत्र रोग परिपाक की अवस्था में आजाता है तब पलकों में कीचड़ आदि साफ हो चुका होता है तथा शोथ और अश्रु-पात भी शान्त हो जाता है। पीड़ा कम होकर खुजली चलने लगती है। निम्न अंजनों का प्रयोग करें—

(१) बड़ी कटेरी की जड़, एरण्डमूल की छाल, सहजने की जड और सेंधानमक समान भाग लेकर बकरी के दूध के साथ पीस कर बत्ती बनावें और आँखों में आंजें। इससे वातज नेत्र रोग नष्ट होता है।

(२) हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, मुनक्का और देवदारु सम भाग को बकरी के दूध के साथ पीसें और बत्ती बनाकर अंजन लगावें। इससे सब प्रकार के अभिष्यन्द रोग दूर होते हैं।

(३) गेरू १ भाग, सेंधा नमक २ भाग, पिप्पली ४ भाग और तगर ८ भाग जल योग से पीस कर, बत्ती बनाकर इसका अंजन करने से अभिष्यन्द में शीघ्र लाभ होता है।

(४) कालीमिर्च को दही के साथ घिसकर अंजन करने से रतौंधी दूर हो जाती है।

(५) हींग, सुहागा और कान का मैल, इनमें से किसी भी एक को शहद में मिलाकर आंजने से रतौंधी दूर होती है।

(६) बेल पत्र के स्वरस और कांजी को तांबे के पात्र में घिस कर उसमें सेंधानमक और सरसों का तैल मिलाकर अंजन करें तो नेत्रस्राव में लाभ होता है।

(७) सेंधानमक, सरसों का तैल और काँजी को काँसे के पात्र में पत्थर से घोटें। जब वह गाढ़ा हो जाय तब कण्डों की आग से धूपित करें तथा बकरी के दूध में मिलाकर आँखों में आँजें। इससे नेत्रशूल, नेत्रों से जल का स्राव, शोथ और लाली दूर हो जाती है।

(८) बेलपत्र के स्वरस को वस्त्र से छानकर उसमें सेंधानमक और घृत मिलावें तथा ताम्र पात्र में डालकर कौड़ी से घोटें। जब वह गाढ़ा हो जाय तब गोमूत्र की अग्नि से धूपित करें और फिर दूध मिला कर नेत्रों में आँजें। इससे नेत्रशोथ, नेत्रशूल आदि में लाभ होता है। यह विधि अभिष्यन्द, अग्निमन्थ और रक्तस्राव में भी हितकर है।

(९) यदि केवल पुराना घी ही नेत्रों में आँजें तो भी सब प्रकार के नेत्र रोगों में हितकर होता है।

(१०) सहजने की पत्तियों का स्वरस निकाल कर उसे ताम्र पात्र में घिसें और घिसते-घिसते गाढ़ा हो जाय तब उसी ताम्रपात्र में फैला दें तथा आरने ऊपले की अग्नि में घी डालकर उस पात्र को धूपित करें। उसके आंजने में शोथ, अश्रुपात, दर्द, पलकों का पारस्परिक घर्षण आदि में लाभ होता है।

(११) सहजने की पत्तियों के स्वरस से उक्त प्रकार से लिप्त ताम्र-पात्र में घृत के दीपक से काजल पारें। इसको आँखों में आंजने से सब प्रकार के नेत्र रोगों में लाभ सम्भव है।

(१२) मंजीठ, मुलहठी, नील कमल, समुद्रफेन, दालचीनी, खस, गोरोचन, जटामांसी, लाल चन्दन, शंख नाभि, तमालपत्र, गेरू, तालीस पत्र और पुष्पांजन को कूट-छान कर अंजन करने से खुजली, क्लेद, मल, अश्रु, रक्तस्राव, वेदना, पिल्ल, अर्म और शुक्र रोग नष्ट हो जाता है।

(१३) रसौत, राल, चमेली के फूल, मैनसिल, समुद्रफेन, सेंधानमक

गेरू और कालीमिर्च समान मात्रा में कपड़छन चूर्णकर शहद के साथ मिलाकर अंजन करें। इससे प्रक्लिन्न वर्त्म और पिल्ल रोग में लाभ होता है। क्लेद और खुजली भी नष्ट होती है। पलकों के रोम गिर गये हों तो पुनः उत्पन्न हो जाते हैं।

(१४) हरिताल, वच और देवदारु को तुलसी के रस के साथ घोंट कर अंजन करें तो नेत्रों का पिल्ल रोग दूर होता है।

(१५) हरड़ के काढ़े के साथ तगर के चूर्ण को घोट कर अंजन करें तो उससे पिल्ल रोग दूर होता है।

(१६) पृश्निपर्णी की जड़, सेंधानमक और कालीमिर्च समान भाग के चूर्ण को ताम्रपात्र में काँजी के साथ घिस कर अंजन करें। इससे भी नेत्रगत पिल्ल रोग का शमन होता है।

(१७) हल्दी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आमला, दारुहल्दी, मुलहठी और मिश्री समान भाग का कपड़छन चूर्ण करें और स्त्री के दूध में मिलाकर नेत्रों में आँजें तो नेत्राभिघात और नेत्रशूल में लाभ होता है।

(१८) हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, जटामांशी, कूट और पिप्पली समान भाग लेकर कूट कपड़छन करें तथा इसका नेत्रों में अंजन करें तो सब प्रकार के नेत्र रोग दूर होते हैं। यह आयुर्वेद का प्रसिद्ध 'सोगत अंजन' है।

(१९) सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, नील कमल, हरड़, कूट और रसोंत की बत्ती बनाकर अंजन करें तो नेत्रार्बुद, पटल, काच, तिमिर, अर्म और अश्रुपात में लाभ होता है। इसमें बत्ती बनाने के लिए सभी द्रव्यों को जल योग से पीसना चाहिए।

(२०) सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, करंज के बीज, हल्दी, दारुहल्दी, सेंधानमक, बिल्व-मूल, वरना-मूल और शंखनाभि समान भाग लेकर कपड़छन चूर्ण कर लें। आयुर्वेद का यह प्रसिद्ध 'नक्तांजन-अंजन' आँखों

में आंजने से अन्धकार, तिमिर, पटल रोग पिच्चट तथा फुली एवं अर्बुद रोग में भी लाभ होता है। इसके प्रयोग से नेत्र ज्योति भी बढ़ती है।

(२१) सीसे को गर्म कर-करके त्रिफला-क्वाथ, भाँगरे के रस, पुनर्नवा-क्वाथ, शहद, घी, बकरी के दूध और गोमूत्र में क्रमशः सात-सात बार बुझावें और अन्त में कूट कर सलाई बना लें। इस सलाई मात्र के अंजन करने से दृष्टि अत्यन्त तीव्र हो जाती है।

(२२) पहिले अंगुली को धरती पर रगड़ें और फिर उससे दीपक पर पारा हुआ काजल आँखों में लगावें तो तिमिर, धूम-दृष्टि तथा अर्म आदि नेत्र रोगों में लाभ होता है।

(२३) चीते की जड़ और मुलहठी समान भाग का चूर्ण करके उतना ही सेंधानमक पीस कर डालें और फिर खूब महीन खरल कर और वस्त्र-पूत कर अंजन करें। इसके एक वर्ष तक करते रहने से असाध्य तिमिर रोग भी दूर हो जाता है।

(२४) श्वेत कमल और नील कमल की केशर को गोबर के रस में घोट कर गोली बनालें। इससे अजन करें तो दिवान्ध्य और रात्र्यान्ध रतोंधी में शीघ्र लाभ होता है।

नेत्र रोगों में अन्यान्य प्रयोग

(१) लाल ईख के अंकुर का रस निकालकर आँखों में डालें तो नेत्राभिघात में शीघ्र लाभ होता है।

(२) कमल को बकरी के दूध के साथ पीस कर रस निकालें और आँखों में डालें तो नेत्रों की लाली, अश्रुपात, पीड़ा, व्रणशुक्र, नेत्र पाकात्यय तथा अजका रोग में हितकर है।

(३) मुर्गी के अण्डे का छिलका, मैनाशिल, शंखनाभि, काच नमक, लाल चन्दन और गेरी समान भाग लेकर कपड़छन्न चूर्ण करें। इसका अंजन करने से फुली और नेत्रार्म रोग का लेखन होता है।

(४) सिरस के बीज, काली मिर्च, पिप्पली और सेंधानमक समभाग के कपड़छन चूर्ण से फुली को घिसें तो फुली दूर होती है।

(५) लालचन्दन १ भाग, सेंधानमक २ भाग, हरड़ ३ भाग और ढाक का गोंद ४ भाग लेकर कपड़छन करें। इसे आँजने से फुली और नेत्रार्म का लेखन होता है।

(६) सेंधानमक, हरड़, वहेड़ा, आमला, पिप्पली, कुटकी, शंखनाभि और ताम्र भस्म समान भाग लेकर पानी के साथ पीसें और बत्ती बना लें। इसके लगाने से फुली दूर होती है।

(७) करंज के बीजों के चूर्ण में टेसू के रस की सात भावनाएं दे और बत्ती बनालें। इससे पुरानी फुली दूर हो जाती है।

(८) स्वर्णमाक्षिक भस्म, मुलहठी का सत, वहेड़े की मिंगी अथवा सेंधानमक में से किसी एक को लेकर शहद के साथ घोटें और अंजन करें तो फुली दूर हो जाती है।

(९) कर्पूर का महीन चूर्ण करके बरगद के दूध में मिलावें और अंजन करें तो कठिन और ऊँची उठी हुई फुली भी दूर होती है।

(१०) हाथी, शकर, ऊँट, गाय, घोड़ा, वकरी और गधे के दाँत, शंखनाभि, मोती और समुद्रफेन समान भाग तथा काली मिर्च चौथाई भाग कूट-पीस कर पानी के साथ घोटें और बत्ती बनालें। इसे आँखों में लगाने से व्रण और फुली दूर होते।

(११) शंखनाभि ४ भाग, मैनशिल २ भाग, कालीमिर्च १ भाग और सेंधानमक आधा भाग लेकर कूट-कपड़छन करें। इसका अंजन करने से व्रण-सहित या व्रण-रहित शुक्र एवं तिमिर रोगों में लाभ होता है।

(१२) आमला, नीम के पत्ते, कैथ के पत्ते, मुलहठी, पठानीलोध, खैरसार और तिल समान भाग का क्वाथ करें और ठन्डा करके नेत्रों में ड़ालें, ! इससे सब प्रकार के शुक्र रोग दूर होते हैं।

(१३) नागरकेशर के पत्तों को पीस कर पानी के साथ मिलावें और छान लें। इसका नेत्रों में सिंचन करने से फुली दूर होती है।

(१४) काली सारिवा का क्वाथ बनाकर उससे नेत्रों में सिंचन करें तो भी फुली दूर होती है।

(१५) समुद्रफेन, मुर्गी के अण्डे का छिलका, सेंधानमक और सहजने के बीज शहद के साथ घोट-पीस कर वत्ती बनावें और वत्ती को सहजने के रस के साथ घिस कर अंजन करें तो फुली दूर हो जाती है।

(१६) तूतिया १ भाग और पानी ४० भाग लेकर घोल लें। इसकी २-३ बूंद नेत्रों में टपकावें तो फुली नष्ट होती है।

(१७) लाल चन्दन, गेरू, लाख, और मालती, की कली समान भाग लेकर पानी के साथ पीसें और बत्ती बनावें। इस वत्ती के लगाने से शुक्रव्रण एवं नेत्रगत रक्त दूर होकर नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं।

(१८) अंजन नामकी फुन्सी (गुहेरी) को पहिले स्वेदन द्वारा मृदु कर लें और फिर निष्पीड़न करें अर्थात् दवाकर कील निकाल दें। जब इस प्रकार वह भिन्न होजाय तब मैनशिल, इलायची, तगर और सेंधे-नमक का चूर्ण करके शहद में मिलाकर प्रतिसारण कर्म करें अर्थात् धीरे-धीरे घिसें और उसके बाद दीपक से पारा हुआ गर्म काजल आँख में लगावें।

अथवा प्रतिसारण कर्म में रसौत के चूर्ण को शहद के साथ मिला कर भी प्रयोग में ला सकते हैं।

(१९) वृक्ष में लगे हुए आमले के फल में सुई आदि से छेद करके रस निकाल लें। यह रस आँखों में डालने से सब प्रकार के नेत्र रोगों नष्ट करने में हितकर है।

(२०) पुराना घी भी आंखों में लगाने से सब प्रकार के नेत्र रोगोंको दूर करने में उपयोगी है।

(२१) अंगुली को दूसरे हाथ की हथेली पर घिसकर अंजन (गुहेरी) नाम की फुन्सी का स्वेदन करें और जौंक लगवाकर उसका रक्त निकलवा दें।

(२२) लगण नाम की पिडिका का भेदन करके गोरोचन, यवक्षार, नीलाथोथा, पीपल और शहद मिलाकर प्रतिसारण कर्म करना चाहिए।

(२३) पिसी हुई विस ग्रन्थि का स्वेदन करके शास्त्र के द्वारा भेदन करें। फिर उसके मुख पर सेंधेनमक का चूर्ण भर दें।

(२४) निमेष रोग में रोगी नासिका द्वारा घृतपान करे और नेत्र में भी घृत ही लगावे तो शीघ्र लाभ होता है।

(२५) पिल्ल रोग में शाखोटक आदि के खुरदरे पत्तों के द्वारा वर्त्म का लेखन करने के पश्चात् रक्तमोक्षण किया जाय और बार-बार विरेचक औषधि दी जाये।

(२६) पोथकी अर्थात् रोहे पड़ने में पटोल पत्र आमले के क्वाथ से आश्च्योतन करना चाहिए।

(२७) तुलसी पत्रों को लहसन के रस के साथ पीस कर आश्च्योतन करने से भी रोहे दूर होते है।

(२८) करंज के वीज, शंखनाभि, तेंदुए के फल और रौप्य भस्म समान भाग लेकर काँच के पात्र से स्त्री के दूध के साथ घिसें और आँखों में आँजें तो व्रणशुक नेत्र पीड़ा तथा आँखों की लालिमा दूर होती है।

(२९) कसीस को शहद के साथ मिलाकर आँजने से शिराहर्ष नामक रोग दूर होता है।

(३०) अथवा राब (गुड़ का शीरा) और शहद मिलाकर अंजन करें तो भी शिराहर्ष में लाम सम्मव है।

(३१) रसौत और शहद को मिलाकर अंजन करने से भी शिराहर्ष में लाभ होता।

(३२) वातज अभिष्यन्द के समान अन्यतोवात और मारुतपर्यय के लक्षणों में भोजन से पहिले घी खायें और भोजन के साथ दूध पीवें तो शीघ्र लाभ सम्भव है।

(३३) सूर्यग्रहण, अग्नि और विद्युत् के देखने से दृष्टि नष्ट हुई हो तो स्निग्ध और शीतल क्रिया द्वारा संतर्पण करें तथा सायंकाल त्रिफला चूर्ण का सेवन करें।

(३४) यदि स्वेद, अग्नि, धूप, भय, शोक, रोग अथवा धूप आदि के कारण से दृष्टि में आघात हुआ हो तो स्निग्ध, शीतल और मधुर प्रयोगों के द्वारा दृष्टि को निर्बल करने वाले उपचार करने से शीघ्र लाभ हो सकता है।

(३५) आगन्तुक दोषों के कारणों का विचार करके वस्त्र को मुख की भाप से गर्म करके स्वेदन करें।

(३६) स्त्री के दूध से आश्च्योतन कर्म करें तो भी आगन्तुक दोषों का परिहार होता है।

(३७) मेढ़ासिंगी, धव, सिरस और चमेली, इनके फूल, मोती और वैडुर्य को बकरी के दूध में खरल करके सात दिनों तक ताँबे के पात्र में रखें और फिर बत्ती बनालें। इसका अंजन करने से दृष्टि स्वच्छ एवं तीव्र हो जाती है।

(३८) सुरमा, मूँगा, समुद्रफेन, मैनाशिल और कालीमिर्च को बकरी के दूध में घोटकर ताम्रपात्र में एक सप्ताह रखें और फिर बत्ती बनाकर अंजन करें। इससे दृष्टि स्वच्छ और निरोग होती है।

(३९) रसौत, घृत, शहद, तालीशपत्र और सोना गेरू को गोबर के रस में घोट कर बत्ती बनावें और इसका अंजन करें तो पित्त के विकार से नष्ट हुई दृष्टि में शीघ्र लाभ होता है।

(४०) काला सुरमा, शंख, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, रसौत, मैनशिल, हल्दी, दारुहल्दी और लाल चन्दन को गाय के गोवर के रस में घोट कर गोली वनावें और पानी के साथ घिस कर आँखों में अंजन करें। इससे रात्र्यान्ध और दिवान्ध्य का प्रतीकार होता है।

(४१) पिप्पली को बकरी के यकृत में रखकर पानी के साथ पकावें और जब सिद्ध होजाय तब उसी के रस में पीसकर गोली बनालें। इसका अंजन करने से रात्र्यान्ध्य (रतौंधी) नष्ट होती है।

(४२) काली मिर्च को भी उक्त प्रकार से यकृत में रखकर पानी के साथ पकावें और सिद्ध होने पर गोली बनाकर अंजन करें तो इससे भी रात्र्यान्ध्य (रतौंधी) रोग दूर होता है।

(४३) अर्म रोग वढ़कर काले भाग तक पहुँच जाने पर उसे बडिश यन्त्र (आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित एक शस्त्र) द्वारा विद्ध करके छेदन करें किन्तु नेत्र के तीन भागों में छेदन न करें।

(४४) पिप्पली, त्रिफला, लाख और लौह चूर्ण को भृंगराज के रस में घोट कर गोली बनावें तथा अंजन करें तो अर्म रोग, तिमिर, काच, कण्डु, फूली एवं अर्जुन आदि नेत्र रोगों में लाभ होता है।

(४५) पुष्पाख्य (पुष्पकासीस अथवा पुष्पांजन), रसौत, शर्करा, समुद्रफेन, शंखनाभि, सेंधानमक, गेरू, मैनशिल और कालीमिर्च समान भाग लेकर कूट-कपड़छन कर लें शहद में मिलावें। इसका अंजन करने से अर्म, काच, तिमिर, अर्जुन और वर्त्मज रोग दूर होजाते हैं।

(४६) शुक्ति का रोग होने पर उसकी निवृत्ति के लिए दश वर्ष पुराना घी पीवें। इस रोग में विरेचन, लेप और सिंचन कर्म करना भी अधिक हितकर है। साथ ही मधुर और शीतल औषधियों से बने अंजनों का प्रयोग भी शुक्तिका रोग की निवृत्ति में सहायक होता है।

(४७) मूँगा, मोती, वैदूर्य, शंखनाभि, फिटकरी लालचन्दन, स्वर्ण

भस्म, रौप्य भस्म समान भाग का अंजन बनाकर आँखों में लगावें तो शुक्तिका रोग में शीघ्र लाभ सम्भव है।

(४८) अर्जुन रोग की निवृत्ति के लिए पित्तज नेत्र रोगों के समान चिकित्सा करना हितकर है। शंखनाभि को .. हद के साथ घोटकर अंजन करना भी लाभकारी है।

(४९) निर्मली और सेंधे नमक को महीन पीस कर अंजन करने से भी अर्जुन रोग दूर हो सकता है।

(५०) समुद्रफेन और शर्करा मिलाकर खरल करें। इसका अंजन भी अर्जुन रोग की निवृत्ति में सहयोगी होता है।

(५१) पिष्टक रोग के शमनार्थ पिप्पली, श्वेत मिर्च, सेंधानमक और सोंठ को समान भाग लेकर कूट छान लें और नीबू के रस में घोट कर अंजन करें तो शीघ्र लाभ सम्भव है।

(५२) यदि उपनाह रोग उत्पन्न हुआ हो तो उसका भेदन करके मंडलाग्र शस्त्र के द्वारा लेखन करें और तत्पश्चात् पोंछकर पिप्पली, शहद और सेंधे नमक से घर्षण करें।

(५३) हरड़ की मिंगी ३ भाग बहेड़ा की मिंगी २ भाग और आमले की मिंगी १ भाग लेकर जल-योग से पीसें और बत्ती बना लें। इसका अंजन करने से नेत्रों की लालिमा तथा अत्यन्त बढ़ा हुआ नेत्र कोप शान्त होता है।

(५४) नेत्रस्राव रोग हो तो दोष के अनुसार त्रिफला का क्वाथ करके मधु, घृत एवं पिप्पली के चूर्ण के साथ पीवें और शिरावेधन करावें तो नेत्रस्राव रुक जाता है।

(५५) त्रिफला के क्वाथ में तूतिया, कसीस, सेंधानमक और रसौत मिलाकर, कूट-कपड़छन करें और जब कृमि ग्रन्थि फूट जाय, तब उस पर लगावें।

(५६) मुलहठी, हरड़, बहेड़ा, आमला और लौह भस्म समान भाग लेकर घृत और शहद के साथ १०० से २५० मिलीग्राम तक की मात्रा में सेवन करने से सब प्रकार के नेत्र रोग दूर होते हैं।

(५७) तिमिर रोग में त्रिफला का क्वाथ करके गोघृत मिलाकर पीने से लाभ होता है। प्रातःकाल त्रिफला क्वाथ से नेत्रों को ठीकप्रकार से धोना भी हितकर है। अथवा त्रिफला चूर्ण या कल्क को शहद और घृत के साथ सेवन करना भी लाभकारी होता है।

(५८) परन्तु वातज, तिमिर रोग में त्रिफला चूर्ण तिल के तैल के साथ सेवन करने से लाभ होता है। कफज तिमिर रोग में शहद के साथ सेवन करना चाहिए। पाँवों में त्रिफला तैल की मालिश करना भी नेत्र तिमिर रोग में उपयोगी है।

(५९) प्रातःकाल ताजा जल से मुख को खूब भर कर उस कुल्ला के जल से नेत्रों का सेचन करें तो तिमिर रोग में शीघ्र लाभ होता है।

(६०) भोजन करने के बाद गीली हथेलियों को परस्पर घिसकर नेत्रों पर लगावें तो तिमिर रोग शीघ्र दूर होता है।

(६१) पिप्पली १० ग्राम और हरड़ २० ग्राम लेकर पानी के साथ पीसें और बत्ती बनालें। आयुर्वेद की यह 'नयनसुखा वर्ति' तिमिर अर्म, पटल, काच और अश्रुपात आदि नेत्र-रोगों को दूर करती है।

(६२) लाल चन्दन, हरड़, बहेड़ा, आमला, सुपारी और ढाक का गोंद समान भाग लेकर पानी के साथ पीसें और बत्ती बनालें। इसका अजन करने से सब प्रकार के तिमिर रोग दूर होते हैं। यह आयुर्वेद की प्रसिद्ध 'चन्दनाद्यवर्ती' बहुत उपयोगी है।

(६३) तिल के फूल ४० नग, पीपल के चावल ३० नग, चमेली के फूल २५ नग और काली मिर्च ८ नग। सब को जल योग से घोटकर बत्ती बनालें। आयुर्वेद की यह प्रसिद्ध 'कुमारिका वर्ति' नष्ट हुई नेत्र-ज्योति को भी पुनः प्राप्त कराने में बहुत उपयोगी समझी जाती है।

(६४) हरड़, हल्दी, पिप्पली और सेंधा नमक समान भाग लेकर जल-योग से पीस कर बत्ती बनालें। इससे खुजली और तिमिर रोग दूर होते हैं। यह आयुर्वेद की प्रसिद्ध हरीतक्यादि वर्ति है, जिसका कभी विफल न होना लिखा है।

(६५) पिप्पली, तगर, नील कमल, मुलहठी और हल्दी समान भाग को जल के साथ घोट कर बत्ती बनावें और नित्य प्रति अंजन करें। यह प्रसिद्ध 'पिप्पल्यादि वर्ति' गरुण के समान तीव्र दृष्टि करने वाली कही गई है।

(६६) सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, गन्धक जारित लौह भस्म, हरड़, बहेड़ा, आमला और सुरमा समान भाग लेकर त्रिफला के जल के साथ घोटें और बत्ती बनालें। आयुर्वेद की यह प्रसिद्ध 'कोकिला वर्ति' तिमिर रोग को शीघ्र ही नष्ट करती है।

(६७) नील कमल, वायविडङ्ग, पिप्पली, लाल चन्दन, सुरमा सेंधा नमक समान भाग लेकर कूट-कपड़छन कर लें। इसको आँखों में आँजते रहने से तिमिर रोग शीघ्र दूर होता है।

(६८) तेजपात, गेरू, कर्पूर, मुलहठी, नील कमल और नागकेशर को कूट-छानकर बनाया गया अंजन सब प्रकार के तिमिर रोगों में लगाने से शीघ्र लाभकारी होता है।

(६९) सीसे को तपा कर त्रिफला के काढ़े, भाँगरे के रस, विक-कल्क युक्त घृत, बकरी के दूध और मुलहठी के काढ़े में सात-सात बार बुझा कर अन्त में सलाई बनालें। इस सलाई से अंजन लगाने से लालिमा युक्त अर्म, पिच्चट, काले भाग के रोग, श्वेत भाग के रोग, सन्धि के रोग और मर्म के रोग तथा अन्य सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं।

(७०) ताँबे का एक स्वच्छ बर्तन लेकर उसमें इमली के पत्तों का रस डालें और सेंधा नमक तथा घुंघची की जड़ का चूर्ण डाल कर खूब

खरल करें। इसका अंजन करने से काच, अर्म, अर्जुन, पिच्चट, तिमिर और अश्रुपात आदि सभी नेत्र रोग दूर हो जाते हैं।

(७१) खस का क्वाथ १६ भाग, गाय का घी ४ भाग तथा सेंधा नमक और पिप्पली का चूर्ण १-१ भाग लेकर एकत्र खरल करें और पकावें। जब वह गाढ़ा हो जाय तब उसमें २ भाग शहद डाल कर मिलावें और ठण्डा होने पर काँच के पात्र में रख लें। इसका अंजन करने से सब प्रकार के तिमिर रोग दूर होते हैं।

(७२) आमले का क्वाथ १६ भाग, गाय का घी ४ भाग और रसौत २ भाग लेकर पकावें तथा २ भाग शहद मिला कर उपर्युक्त प्रकार से पात्र में भर कर रखें। इसका अंजन करने से पित्त और वात से उत्पन्न नेत्र रोग, तिमिर रोग एवं पटलगत नेत्र रोग दूर होते हैं।

(७३) शुंठि और भृंगराज समान भाग के चूर्ण में मुलहठी के कल्क द्वारा सिद्ध तैल को मिला कर नस्य लें तो बढ़े हुए पटल रोग भी शीघ्र दूर हो जाते हैं।

(७४) क्षीर काकोली, अनन्तमूल, तेजपात, मंजीठ और मुलहठी समान भाग को बकरी के दूध में पीस कर सुहाता-सुहाता गर्म लेप करना चाहिए। इससे नेत्र-शूल और नेत्र लालिमा में लाभ होता है।

(७५) दूध, जौ, गेरू और अनन्तमूल को गोघृत के साथ पीसकर लेप करने से नेत्रों की पीड़ा और लालिमा मिट जाती है।

अनेक नेत्र रोग नाशक काजल

मरे हुए केंचुए एकत्र करके उनमें लाक्षारस की भावना दें और घोटते-घोटते खुश्क चूर्ण कर लें। फिर इसमें बराबर की मात्रा में मुलहठी का चूर्ण मिला कर लाक्षारस से रङ्गी हुई रुई में रख कर बत्ती बनालें। इस बत्ती को गोघृत से ठीक प्रकार से भिगो कर इसके एक सिरे पर आग लगावें तथा इससे जो काजल पड़े उसे काँच के पात्र में

एकत्र कर लें। यह काजल आँजने से दूरान्ध्य (दूर की वस्तु दिखाई न देना), आसन्नान्ध्य (निकट की वस्तु दिखाई न देना, रात्र्यान्ध (रतोंधी) काच रोग एवं तिमिर रोग आदि में लाभ होता है।

नयन शाणांजन

पीपल, सेंधानमक, कालीमिर्च, रसौत, सुरमा,समुद्रफेन, श्वेत पुनर्नवा लाल पुनर्नवा, शर्करा, हल्दी, लालचन्दन, शहद, तूतिया, हरड़, मैनसिल, नीम के पत्ते, लोध, फिटकरी, शङ्खनाभि और कपूर, सब का पृथक-पृथक चूर्ण करके मोटे वस्त्र में छानें और समान भाग एकत्र कर शहद के साथ लौहपात्र में रखें और ताँबे के डंडें से मर्दन करें। इसे आँजने से तिमिर, पटल और फुली रोगों में लाभ होता है।

नयनामृत

शुद्ध पारद और सीसा ४-४ भाग, सुरमा ८ भाग और कपूर १ भाग खरल कर करके कपड़छन करें और एकत्र मिला लें। इसका अंजन करने से तिमिर रोग, पटल रोग, काचविन्दु, शुक्र, अर्म, अर्जुन आदि रोगों में लाभ होता है। इसको बनाते समय सीसा को पिघलाकर पारे के साथ मिलाकर ठण्डा होने पर खरल किया जाता है।

मुक्तादि महा अंजन

मोती, कपूर, काँचलवण, अगर, कालीमिर्च, पीपल, सेंधा नमक, एलवालुक, सोंठ, शीतलचीनी, कांस्य भस्म, सीसा भस्म, हल्दी, मेंनसिल, शङ्खनाभि, अभ्रक, भस्म, नीलाथोथा, मुर्गी के अण्डों का छिलका, बहेड़ा केशर, हरड़, मुलहठी, लाजवर्द, चमेली के पुष्प, तुलसी के नये पुष्प, तुलसी के बीज, करंज बीज, नीम की छाल, अर्जुन की छाल, नागर मोथा, ताम्रभस्म और रसौत समान भाग लेकर काष्ठौधियों को कूट-कपड़छन करें तथा मोती, कपूर, केशर और भस्मादि को पृथक घोटकर उक्त कपड़छन चूर्ण को मिला दें और फिर शहद के साथ खूब महीन

घोट कर काजल के समान करलें । यह महा अंजन सभी बढ़े हुये नेत्र रोगों को दूर करने में अत्यन्त उपयोगी है । इसमें सीसा भस्म और ताम्र भस्म गन्धक द्वारा की हुई लेनी चाहिए ।

नागार्जुन अंजन

हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, सेंधानमक, मुलहठी, तूतिया, रसौत, प्रयौण्डरीक (पुण्डरिया), वायविडंग, लोध और ताम्र भस्म समान भाग का विधिवत चूर्ण करके वर्षा के पानी से घोट कर वत्ती बनावें और बाद में उससे अंजन करें । इससे तिमिर रोग, विशेष कर पटल रोग में शीघ्र लाभ होता है । यदि इस वत्ती को स्त्री के दूध में घिस कर अंजन करें तो नवीन नेत्र-रोग में और टेसू के रस में घिस कर करें तो तो पल्व रोग, फुली तथा लालिमा में लाभ होता है । लोध के जल में घिस कर करने से शीघ्र आने वाले तिमिर रोग में तथा बकरे के मूत्र में घिस कर करने से बहुत दिनों के बन्द हुए नेत्र खुल कर स्वच्छ हो जाते हैं ।

सेंधवादि अंजन

सेंधा नमक, देवदारु, सोंठ, बिजौरा नीबू का रस, गोघृत, स्त्री का दूध और पानी समान भाग लेकर एकत्र घोटें और नेत्रों में अंजन करें । इससे शुक्रपात आदि नेत्र रोगों मे लाभ होता है ।

शिरोत्पातहर अंजन

शहद, घी और सुरमा को मिला कर खूब घोट-पीस कर अंजन करें तो शिरोत्पात में लाभ होता है । इसी प्रकार सेंधा नमक और कसीस को स्त्री के दूध के साथ पीस कर अंजन करें तो भी यही लाभ होता है ।

तारकाद्य वर्ती

गन्धक द्वारा जारित [illegible] भस्म, ताम्र [illegible] शुद्ध पारद, सीसा,

कपूर, खर्पर भस्म (केचल अग्नि द्वारा की गई), शुद्ध रसौत, गन्धक द्वारा की गई कांस्य भस्म तथा शङ्ख का चूर्ण लेकर हंसराज के रस में एक दिन खरल करें और बत्ती बना लें। इसी बत्ती का अंजन करने से सब प्रकार के नेत्र रोग दूर होते हैं।

सैन्धवादि वर्ती

सेंधा नमक, पिप्पली, कूट, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी मुद्गपर्णी, त्रिफला औररसांजन समान भाग लेकर सुरामण्ड में खरलकर बत्ती बनालें अथवा सेंधा नमक आदि को त्रिफला के रस में घोट-सुखा कर सुरामण्ड के द्वारा बत्ती बनावें। इसमें आवश्यक नहीं कि त्रिफला चूर्ण और रसौत डाली जाय। इसे आंखों में आंजने से कफज अभिष्यन्द, पोथकी, वर्त्मरोग, कृमि ग्रन्थि और कूकूणक रोगों में लाभ होता है।

चन्द्रप्रभावर्ति

सुरमा, श्वेत मिर्च, पिप्पली, मुलहठी, बहेड़े की मिगी शङ्खनाभि और मैनशिल समान भाग लेकर बकरी के दूध में खरल करके बना लें। इसे छाया में सुखा कर रखें और समय पर अंजन करें तो इससे अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, लालिमा, अधिमांस, अर्म और रतौंधी दूर होती है। यह जन्मान्ध्य में भी हितकर कही गई है।

चन्द्रोदय वर्ति

हरड़, वच, कूट, पिप्पली, कालीमिर्च, बहेड़े की मिगी, शङ्खनाभि और मैनशिल समभाग को बकरी के दूध में घोट कर बत्ती बनावें। फिर पानी के साथ घिर कर आँखों में लगावें तो तिमिर, खुजली, पटल, अर्बुने, अधिमाँस, रतौधी तथा दो वर्ष की फुली में लाभ होता और नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं।

वृहच्चन्द्रोदय वर्ति

रसौत, छोटी इलायची, कुंकुम, मैनशिल, शङ्खनाभि, सहजने के

बीज और शर्करा समान भाग लेकर पानी के साथ घोटें और बत्ती बना लें। इससे नेत्र मल, खुजली तथा तिमिर रोग दूर होकर नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं।

सुखावती वर्ति

निर्मली के फल, शङ्खनाभि, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, सेंधानमक, मिश्री, समुद्रफेन, रसौत, शहद, वायविडंग, मैनशिल और मुर्गी के अण्डे का छिलका समान भाग लेकर जल योग से बत्ती बनावें। इससे तिमिर, पटल, काच, अर्म, फुली, खुजली, क्लेद, अर्बुद तथा कीचड़ निकलने आदि नेत्र-दोषों में लाभ होता है।

षडंग गुग्गुल

हरड़, बहेड़ा, आमला, परवल के पत्ते, नीम की छाल और अडूसे की जड़ का काढ़ा करके उसमें गुग्गुल का का चूर्ण डाल कर पीवें। इससे शोथ, नेत्रपाक, नेत्र शूल, पिल्ल, व्रण युक्त फुली, नेत्र की लाली आदि विकारों में शीघ्र लाभ होता है।

क्षत शुक्लहर गुग्गुल

लौह भस्म, मुलहठी, त्रिफला और पीपल समान भागतथा शुद्ध गुग्गुल सब के बराबर लें और कूट-पीस कर ४०० मिलीग्राम से ८०० मिली-ग्राम तक की मात्रा में असमान भाग शहद और घी के साथ सेवन करें। इससे नेत्र रोगान्तर्गत शुक्ल रोग एवं काच रोग में शीघ्र लाभ होता है।

आजघृतादि पाक

बकरी का घी २ किलोग्राम, दूध चौगुना, कल्क के लिए मुलहठी, नीलो[illegible] ग्राम। विधिवत् घृत सिद्ध

करके नेत्रों में डाले तथा सेवन भी करें। इससे नेत्राभिघात रोग में शीघ्र लाभ होता है।

निम्बादि योग

नीम की पत्तियां, चमेली की पत्तियाँ और सेंधा नमक समान भाग लेकर पीस लें और गोली बनालें। फिर लोध भी उतनी ही लेकर पीसें और गोली के मध्य में रखकर पुनः गोली बनालें। इसे गर्म करके इसके चारों ओर कांजी में भीगी हुई कोमल रुई लपेट दें और फिर इस गर्म-गर्म गोली को नेत्रों पर काफी देर तक फेरें, जिससे कि ठीक प्रकार से सिकाई हो सके। इससे सब प्रकार के नेत्र कोप में लाभ होता है।

दार्व्यादि लेपन

दारुहल्दी, परवल के पत्ते, मुलहठी, नीम की छाल, पद्माख, नील कमल और पौण्डरीक (पुन्डरिया) समान भाग को चौगुने जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानलें। इसके बाद पुनः अग्नि पर रख कर पकावें। और गाढ़ा करें। तत्पश्चात् ठन्डा होने पर चौथाई भाग शहद मिला कर इसका लेप करना चाहिये। इससे नेत्रों में जलन, शोध, लाली और अश्रुपात में लाभ होता है।

तुत्थादि द्राव

तूतिया १० ग्राम, सहजने के बीज ४ नग और कांजी ३०० मिली-लीटर। तूतीया और बीजों को काँजी के साथ पीस कर ताम्बे के बर्तन में रखे। इसे केवल १-२ बूंद की मात्रा में नेत्रों में डालने से वर्षों का पुराना पिल्ल रोग, अश्रुस्राव, कन्डू एवं शोध आदि में लाभ होता है।

हरीतक्यादि क्वाथ

हरड़ का वक्कल १ भाग, बहेड़ा २ भाग और आमले ४ भाग लेने पर सब का भार २४ ग्राम लें और आधे लीटर पानी के साथ अष्टमांश शेष क्वाथ करें। इसे छान कर प्रातःकाल पीने से अभिष्यन्द, नेत्रस्राव,

लालिमा, तिमिर, नेत्रों का उठना, नेत्र शूल तथा रक्त रोगों में शीघ्र लाभ होता है। यदि नेत्र में चोट लग जाय तो इसी का ठण्डा आश्च्योतन करना हितकर है।

बृहद्वासादि क्वाथ

अडूसा, नागर मोथा, नीम की छाल, परवलके पत्ते, कुटकी, गिलोय लाल चन्दन, कुड़े की खाल, इन्द्रयव, दारुहल्दी, चित्रक, मूल, सोंठ, चिरायता, आमला, हरड़, बहेड़ा, कृष्ण सारिवा और जौ समान भाग लेकर मिश्रित २४ ग्राम लेकर तिहाई लीटर पानी के साथ चतुर्थांविशेष क्वाथ करें तथा छान कर पीसें। यह क्वाथ प्रातःकाल लेना हितकर है। इससे तिमिर, खुजली, पटल, अर्बुद, फूली आदि सब प्रकार के नेत्र रोगों में लाभ होता है।

वासकादि क्वाथ

अडूसा, हरड़, नीम की छाल, आमला, नागरमोथा, बहेड़ा और परवल के पत्तों का उक्त विधि से क्वाथ करके चौथाई शेष रहने पर छानें और पी जाँय। इसको प्रातःकाल पीने से और इसी क्वाथ को ठण्डा करके नेत्र धोने से कफज रक्त स्राव दूर होता है। सामान्यतः यह क्वाथ सभी नेत्र रोगों में हितकर है।

कृष्णादि तैल

कल्क के लिए पिप्पली, वायविडंग, मुलहठी, सेंधा नमक, और सोंठ सब मिलाकर ५०० ग्राम तिल का तैल २ लिटर और बकरी का दूध ८ लिटर। विधि पूर्वक तैल सिद्ध करके नस्य लेने से तिमिर, फूली शिरोरोग, नेत्रशूल एवं पाकात्यय रोग में लाभ है।

अजित तैल

तिल का तैल ८० ग्राम, कल्क के लिए मुलहठी २० ग्राम, आमले

का स्वरस और गाय दूध प्रत्येक ६४० मिलीलिटर। तैल-पाक-विधि से तैल सिद्ध करें। इसकी नस्य लेने से तिमिर रोग दूर होकर दृष्टि स्वच्छ हो जाती है। इससे गई हुई दृष्टि भी पुनः लौट आती है।

भृंगराज तैल

भाँगरे का स्वरस ६४० मिलीलिटर, कल्क के लिए मुहलठी २० ग्राम और तिल तैल १६० मिलीलिटर। तैल-पाक विधि से तैल सिद्ध करके नस्य लेने से दृष्टि स्वच्छ होती है। धूसर दृष्टि एवं तिमिर रोग में हितकर है। वली पलित रोग भी दूर होता है।

षडंग घृत

हरड़, बहेड़ा, आमला, परवल-पत्र, नीमकी छाल और वासा मूल का ४ लिटर क्वाथ, १ लीटर (या कि.ग्रा.) घृत तथा गुग्गुल २५० ग्राम लें। क्वाथ करते समय गुग्गुल को पोटली में बांध कर उसमें लटका दें तथा क्वाथ तैयार होने पर छान लें और गुग्गुल को पोटली से निकाल कर घोल दें तथा उसमें घृत डाल कर पकावें। जब घृत मात्र शेष रह जाय तब छान कर सुरक्षित रखें। इसकी मात्रा ३ ग्राम से १२ ग्राम तक लेनी चाहिए। इससे सभी नेत्र रोगों में लाभ होता है।

त्रिफलाद्य घृत

त्रिफला का क्वाथ और शतावरी का क्वाथ ८-८ भाग, घृत ४ भाग तथा मुलहठी १ भाग। विधि पूर्वक घृत सिद्ध करके ठण्डा करलें और सब का आधा भाग शहद मिलाकर सेवन करें तो इससे बढ़ा हुआ तिमिर रोग, सन्निपातजन्य तिमिर रोग दूर होता है।

महा त्रिफलाद्य घृत

त्रिफला का क्वाथ, भाँगरे का रस, अड़ूसे का रस, शतावरी का क्वाथ, बकरी का दूध, गिलोय का रस, आमले का रस और गाय का

घी प्रत्येक मिलीलिटर अथवा ६४० ग्राम। कल्क के लिए पिप्पली, मिश्री, मुनक्का, त्रिफला, नील कमल, मुलहठी, क्षीरकाकोली, गिलोय और कटेरी समान भाग सब मिलाकर १६० ग्राम लेकर घृत-पाक विधि से घृत सिद्ध करके स्वच्छ बर्तन में रखें। यह घृत सब प्रकार के नेत्र-रोगों को दूर करने में उपयोगी है। रक्तज नेत्र रोग रक्त-दृष्टि से उत्पन्न नेत्र रोग, नेत्र से रक्त निकलना, रतौंधी, तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, कठिन से कठिन यक्ष्म कोप, वातज, पित्तज कफज एवं सन्निपातज सब प्रकार के नेत्र रोग, अदृष्टि (अन्धापन), मन्द दृष्टि, वातज और पितज स्राव, खुजली, दूर दृष्टि एवं आसन्न दृष्टि में विकार आदि सभी में इसका हितकर उपयोग है। इससे गिद्ध के समान तीव्र दृष्टि हो जाना कहा है।

नृप वल्लभ घृत

कल्क के लिये जीवक, ऋषभक, मेदा, मुनक्का, शालपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेटी, मुलहटी, खरेंरी, वायविडंग, मंजीठ, शर्करा, रास्ना, नील कमल, गोखरू, प्रपौण्डरीक (पुण्डरिया), पुनःर्नवा, सेंधा नमक और पिप्पली ५-५ ग्राम, घृत ६४० ग्राम, गाय का दूध ढाई लिटर। घृत-पाक विधि से घृत सिद्ध करें। इसके प्रयोग से तिमिर, पटल, काच, रात्र्यान्ध्य, दिनान्ध्य, अर्बुद, श्वेतता, लिङ्गनाश, नीलिका, आदि सभी नेत्र-रोगों में लाभ होता है। यह घृत नेत्र रोगों के अतिरिक्त नीलिका, व्यंग, मुख और नाक की दुर्गन्ध, अकाल में केश श्वेतता, हनुस्तम्भ, कास, श्वास, शोथ हिक्का, अक्षिपाकात्यय, मुख के रोग, जिह्वा के रोग, अर्द्धावभेदक शिरशूल, शिरःस्तम्भ, बाहुस्तम्भ तथा उर्ध्व शत्रु रोग आदि में भी हितकर है। यदि घृत के स्थान पर तिल-तैल डालें तो नृतवल्लभ तैल सिद्ध हो जाता है और वह भी इसी के समान गुणकारी होता है।

तिमिरहर लौह

त्रिफला, श्वेत कमल और मुलहठी १-१ भाग, लौह भस्म ३ भाग,

भस्म को पृथक रखकर त्रिफला आदि का कूट-कपड़छन करें और फिर भस्म को भी मिलाकर खरल कर रख लें। इसे १०० मि. ग्रा. से ४०० मि.ग्रा. तक की मात्रा में आयु बल के अनुसार शहद या अन्य उचित अनुपात के साथ सेवन करने से तिमिर रोग दूर होता है।

नेत्राशनिरस

अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, लोह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, रसौत पातनयन्त्र द्वारा शोधित अमलारस गन्धक ४८-४८ ग्राम लेकर त्रिफला के क्वाथ और भाँगरे के स्वरस की ७-७ भावनायें दें तथा इसमें पीपला मूल मुलहठी, छोटी इलायची, पुनर्नवा, देवदारु, पाठा, भृंगराज, कचूर, वच, नील कमल और लाल चन्दन १-१ ग्राम का कपड़छन चूर्ण मिला कर लोहे के पात्र में रखें तथा गाय के घी और शहद के साथ लोहे की मूसली से घोट कर रख लें। इसकी १०० मि. ग्रा. से २५० मि. ग्रा: तक गर्म पानी के साथ ली जानी चाहिए। रतोंधी, तिमिर, काच रोग, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, जीर्ण पिष्टक आदि तथा सभी वातज, पित्तज और कफज नेत्र रोगों में इससे शीघ्र सम्भव है।

नयन चन्द्र लौह

सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, हरड़, वहेड़ा, आमला, काकड़ासिंगी, कचूर, रास्ना, सोंठ, मुनक्का, नील कमल, काकोली, मुलहठी, खरेंटी, नागकेशर, छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी समान भाग मिला कर कपड़-छन चूर्ण करें और कुल ४० ग्राम लें तथा लौह भस्म और अभ्रकभस्म १०-१० ग्राम लेकर सब को एकत्र करें तथा त्रिफला के काढ़े, तिल के तैलऔर भांगरे के रस की क्रमशः एकःएक भावना देकर २२५ मि.ग्रा. प्रमाण गोलियां बना लें। इनका उचित अनुमान के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के नेत्र-रोग दूर होते हैं।

माक्षिकादि वटिका

स्वर्णमाक्षिक भस्म ४ ग्राम, शोधित गन्धक, शोधित पारद और अभ्रक भस्म २ २ ग्राम तथा मुक्ता भस्म और स्वर्ण भस्म १-१ ग्राम। पहिले गन्धक-पारद की कज्जली करें और एक-एक करके सभी भस्में डाल-डाल कर खरक करते जाँय तथा मकोय के स्वरस की तीन भावनायें देकर २२५ मि.ग्रा प्रमाण की गोलियां बनालें तथा कमल के पत्तो में लपेट कर अनाज के ढेर में रखें। कुछ दिनों बाद निकालकर त्रिफला के क्वाथ अथवा किसी अन्य उचित अनुपान के साथ सेवन करें तो अनेक उपद्रव वाले सब प्रकार के नेत्र रोग दूर होते हैं।

सप्तामृत लौह

हरड़, बहेड़ा आमला, लौह भस्म और मुलहठी समान भाग लेकर हरड़ आदि काष्ठौषधियों का पकड़छन चूर्ण करलें और लौहभस्म डालकर खूब घोटें। इसका सेवन सायंकाल के समय १२५ मि.ग्रा. से २५० मि. ग्रा. तक की मात्रा में शहद और घी में मिला कर करना चाहिये। इस प्रकार सात द्रव्यों के योग वाला यह सप्तामृत लौह तिमिर, व्रण, लालिमा खाज, रतौंधी, अर्बुद, जल-स्राव, दाह, शूल, पटल, काच का झिल्लक आदि नेत्र रोगों को दूर करता है। इसके अतिरिक्त कन्ठ से ऊपर के भाग में होने वाले दाँत, कन्ठ एवं शिर के रोगों में भी अत्यन्त हितकर है। बहुत दिनों की नष्ट हुई जठराग्नि भी इसके सेवन से प्रदीप्त होकर सभी रोगों को दूर करने में सहायक होती है।

नेत्र रोगों में पथ्य विचार

आयुर्वेद के आचार्यों ने नेत्र-रोगों में पथ्य-विचार करते हुए आश्च्योतन, लंघन, अंजन, स्वेदन, विरेचन, प्रतिसारण, प्रपूरण, परिषेचन नस्य, रक्त मोक्षण, शस्त्रकर्म, लेप, घृत-पान, मानसिक शुद्धि, चित्त निरोध

तथा पाँवों की शुद्धि आदि को आवश्यक माना है । इनके अतिरिक्त मूँग, जौ, लाल शालि चावल, सौ वर्ष पुराना घी, जंगली कुलथी का यूष, पेया, विलेपी, लहसन, परवल, बैंगन, ककोड़ा, करेला, कच्चा केला, कच्ची मूली, पुनर्नवा (सांठी), भाँगरा, मकोय, शालिंच शाक, ग्वार पाठा, दाख, धनियाँ सेंधा नमक, लोध, त्रिफला और शहद आदि का सेवन पथ्य माना गया हैं । नेत्र रोगी को उसके दोषानुसार कढ़वे और हल्के पदार्थ देने चाहिए । पांवों में जूते पहनना तथा स्त्री का दूध आँखो में डालना भी पथ्य हैं । चन्दन और कर्पूर का लेपन करना ही हितकर रहता है ।

मांसाहारियों के लिये आयुर्वेद के मत में लावा पक्षी, मोर, वनमुर्ग, कछुआ, चिड़िया, सफेद तीतर का मांस सेवन करना पथ्य समझा गया है ।

नेत्र रोगों में अपथ्य विचार

क्रोध, शोक, मैथुन, अश्रुपात, अपानवायु, मल, मूत्र, निद्रा तथा वमन आदि के वेगों को रोकना अपथ्य माना गया है । सूक्ष्म पदार्थों को देखना, दांत-किटकिटाना, स्नान, रात्रि भोजन, धूप सेवन, पतले पदार्थों का सेवन, धूलि-धुँआ आदि का सेवन, नेत्र में स्वेदन, विपरीत अन्न का सेवन, अधिक अन्न सेवन तथा अधिक जल पीना भी अपथ्य हैं ।

वमन भी अपथ्य है, इसलिए इन्हें रोकना चाहिए । दही, वेंत की कोंपल, महुए के फूल, तरबूज, अंकुरदार अन्न, पान खाना, अम्ल, लवण विदाहि, कटु, गर्म एवं भारी अन्न का खाना; पीना भी अपथ्य एवं निषिद्ध कहा गया है ।

शराब तथा मछली एवं जङ्गली जीवों के अतिरिक्त अन्य जीवों का मांस आदि का सेवन करना भी नेत्र रोगों से पीड़ित रोगी के लिये पूर्णतया वर्जित एवं अपथ्य माना गया है ।

नेत्र रोगों पर यूनानी प्रयोग

यूनानी और आयुर्वेद के प्रयोगों की विधियों में बहुत कुछ साम्य होने के बहुत-से हकीम और वैद्य समान औषधियों का प्रयोग करते हैं, उनसे अपेक्षित लाभ भी होता देखा गया है। अतः यहाँ कुछ ऐसे प्रयोगों का वर्णन किया जाता है।

रमद की चिकित्सा

नेत्रों में पीड़ा एवम् कोओं में लाली के साथ शोथ आदि उत्पन्न होने को रमद कहतेहैं। यही लक्षण अभिष्यन्द में होते हैं यूनानी चिकित्सकों के मत में इस रोग में फस्द खुलवाना या जोंक लगवाना अधिक हितकर समझा जाता है। आहार में मांस, खटाई और मिष्टान्न का त्याग किया जाना चाहिये। रमद के आरम्भ में नेत्रों का ठण्डा पानी न लगावें। हल्दी अथवा नील में रङ्ग कर आँखों के सामने रखें।

रमद की गोली

फिटकरी फूली हुई १ ग्राम, हल्दी ७ ग्राम, अफीम ५ ग्राम और पके हुए कागजी नीबू का स्वरस पाव भर एकत्र कर लोहे की कढ़ाई में अग्नि पर पकावें तथा गाढ़ा हो जाय तब गोली बना कर रख लें। जब प्रयोग में लानी हो तब पानी के साथ घिस कर पतला लेप करें और थोड़ा सा आँख में भी लगावें।

नेत्र शूल पर पोटली के योग

(१) ग्वार पाठे का गूदा १ ग्राम और अफीम ११५ मि.ग्रा. घोट-पीस कर पोटली बनावें और पानी में तर करके आंख पर फेरें और आंख में टपकावें। इससे दर्द में शीघ्र लाभ होता है।

तथा पाँवों की शुद्धि आदि को आवश्यक माना है। इनके अतिरिक्त मूँग, जौ, लाल शालि चावल, सौ वर्ष पुराना घी, जंगली कुलथी का यूप, पेया, विलेपी, लहसन, परवल, बैंगन, ककोड़ा, करेला, कच्चा केला, कच्ची मूली, पुनर्नवा (सांठी), भाँगरा, मकोय, शालिच शाक, ग्वार पाठा, दाख, धनियाँ सेंधा नमक, लोध, त्रिफला और शहद आदि का सेवन पथ्य माना गया हैं। नेत्र रोगी को उसके दोषानुसार कढ़वे और हल्के पदार्थ देने चाहिए। पांवों में जूते पहनना तथा स्त्री का दूध आँखो में डालना भी पथ्य है। चन्दन और कपूर का लेपन करना ही हितकर रहता है।

मांसाहारियों के लिये आयुर्वेद के मत में लावा पक्षी, मोर, वनमुर्ग, कछुआ, चिड़िया, सफेद तीतर का मांस सेवन करना पथ्य समझा गया है।

नेत्र रोगों में अपथ्य विचार

क्रोध, शोक, मैथुन, अश्रुपात, अपानवायु, मल, मूत्र, निद्रा तथा वमन आदि के वेगों को रोकना अपथ्य माना गया है। सूक्ष्म पदार्थों को देखना, दांत-किटकिटाना, स्नान, रात्रि भोजन, धूप सेवन, पतले पदार्थों का सेवन, धूलि-धुँआ आदि का सेवन, नेत्र में स्वेदन, विपरीत अन्न का सेवन, अधिक अन्न सेवन तथा अधिक जल पीना भी अपथ्य हैं।

वमन भी अपथ्य है, इसलिए इन्हें रोकना चाहिए। दही, वेंत की कोंपल, महुए के फूल, तरबूज, अंकुरदार अन्न, पान खाना, अम्ल, लवण विदाहि, कटु, गर्म एवं भारी अन्न का खाना; पीना भी अपथ्य एवं निषिद्ध कहा गया है।

शराब तथा मछली एवं जङ्गली जीवों के अतिरिक्त अन्य जीवों का मांस आदि का सेवन करना भी नेत्र रोगों से पीड़ित रोगी के लिये पूर्णतया वर्जित एवं अपथ्य माना गया है।

नेत्र रोगों पर यूनानी प्रयोग

यूनानी और आयुर्वेद के प्रयोगों की विधियों में बहुत कुछ साम्य होने के बहुत-से हकीम और वैद्य समान औषधियों का प्रयोग करते हैं, उनसे अपेक्षित लाभ भी होता देखा गया है। अतः यहाँ कुछ ऐसे प्रयोगों का वर्णन किया जाता है।

रमद की चिकित्सा

नेत्रों में पीड़ा एवम् कोओं में लाली के साथ शोथ आदि उत्पन्न होने को रमद कहतेहैं। यही लक्षण अभिष्यन्द में होते हैं यूनानी चिकित्सकों के मत में इस रोग में फस्द खुलवाना या जोंक लगवाना अधिक हितकर समझा जाता है। आहार में मांस, खटाई और मिष्टान्न का त्याग किया जाना चाहिये। रमद के आरम्भ में नेत्रों का ठण्डा पानी न लगावें। हल्दी अथवा नील में रङ्ग कर आँखों के सामने रखें।

रमद की गोली

फिटकरी फूली हुई १ ग्राम, हल्दी ७ ग्राम, अफीम ५ ग्राम और पके हुए कागजी नीबू का स्वरस पाव भर एकत्र कर लोहे की कढ़ाई में अग्नि पर पकावें तथा गाढ़ा हो जाय तब गोली बना कर रख लें। जब प्रयोग में लानी हो तब पानी के साथ घिस कर पतला लेप करें और थोड़ा सा आँख में भी लगावें।

नेत्र शूल पर पोटली के योग

(१) ग्वार पाठे का गूदा १ ग्राम और अफीम ११५ मि.ग्रा. घोट-पीस कर पोटली बनावें और पानी में तर करके आंख पर फेरें और आंख में टपकावें। इससे दर्द में शीघ्र लाभ होता है।

(२) लोध और फिटकरी २-२ ग्राम, अफीम १ ग्राम तथा इमली की पत्तियाँ ८ ग्राम एकत्र पीस कर पोठली बनावें और पानी में तर करके हर समय आंख पर फेरते रहें। यह भी दर्द में अत्यन्त हितकर है।

(३) फिटकरी मुर्दासङ्ग, लोध, हल्दी और सफेद जीरा १-१ ग्राम अफीम १ चना प्रमाण काली मिर्च ४ नग तथा तूतिया उड़द प्रमाण कूट-छान कर पोटली बनावें और पानी से तर करके नेत्रों पर फेरें।

(४) भुनी फिटकरी सफेद जीरा और लोध समान भाग लेकर कूट-छान लें तथा ग्वारपाठे के गूदे में मिलाकर पोटली बाँधें और गुलाब जल में तर करके आँखों पर फेरें।

(५) आमला और रसौत, इमली की पत्तियाँ, गेरू, भुनी फिटकरी, सफेद जीरा, पीली हरड़ का बक्कल, काबुली हरड़ का बक्कल और अफीम समान भाग लेकर पोटली में बांधें तथा गुलाबजल में भिगो कर आंख पर फेरें।

रमद में गुणकारी प्रयोग

(१) गोभी को पीस कर टिकिया बनावें और आंखों पर फेरें तो रमद में लाभ होता है।

(२) अनार के पत्तों को पीस कर टिकिया बनावें और सोतेसमय नेत्र पर बाँधें।

(३) कपास की पत्ती को पीस कर दही के साथ औटावें और आंख में लगावें तो रमद में लाभ होता है।

(४) बांस के पत्ते पीस कर टिकिया बनावें और नित्य प्रति ३ दिनों तक आंख में बांधें।

(५) सहजने के पत्तों का रस निकाल कर शहद में मिलावें और रात्रि में आंख पर बाँधें। ३ दिन में लाभ हो जाता है।

(६) बड़ी हरड़ का छिलका, बहेड़े का छिलका और आमला समान भाग लेकर जौकुट करें रात्रि के समय मिट्टी के बर्तन में भिगो दें तथा प्रातःकाल इस पानी से नेत्रों को धोवें। इससे नेत्रों की खुजली, लाली, गर्मी, दर्द आदि में लाभ होता है।

(७) कटेरी के पत्ते पीस कर नेत्र पर बाँधें और पत्तों का रस निचोड़ कर नेत्र में टपकावें तथा छिली हुई मुलहठी कूट कर थोड़े से पानी के साथ पीस लें और उसमें रुई भिगोकर आंख पर रखें तो आँख की लालिमा आदि में लाभ होता है।

(८) यदि किसी लड़के को रमद की उत्पत्ति हुई हो तो लड़की के मूत्र में रुई भिगो कर आँख पर बाँधें। लड़की को रमद हो तो लड़के के मूत्र में रुई भिगोकर बांधनी चाहिए।

(९) जली हुई मेथी का लुआब थोड़े से कतीरा के साथ पीसकर छानें आँख में टपकावें तो अधिक दर्द एवं लाली आदि में भी लाभ होता है।

(१०) लोध और पीली हरड़ का वक्कल समान भाग लेकर अनार के पत्तों के रस में पीस कर छानें और उसमें रुई भिगोकर रात्रि के समय नित्य प्रति तीन दिन तक आँख पर बांधें।

(११) कच्चा आम पीस कर टिकिया-सी बनालें और आंखपर बांधें तो रमद में लाभ होता है।

(१२) अनार की बिना फूली (कच्ची) एक कली तोड़कर निगल जाँय तो एक वर्ष तक रमद की आशंका नहीं रहती। यदि दो कलियाँ निगलें तो दो वर्ष तक रमद से बचाव रहता है।

(१३) यदि एक दिन में चालीस नग मुण्डी निगल लें तो एक वर्ष तक रमद का भय नहीं रहता। यह १२ और १३ नम्बर के प्रयोग उस समय करने को लिखा है, जबकि आँखें दुख न रही हों।

(१४) चाकसू, मुकश्शर २ भाग, अंजरूत और मिश्री १-१ भाग

कूट-छान कर आँखों में छिड़कें। यह योग बालकों की रमद में लाभकारी है।

शियाफ अबीयज (सलाई)

धोया हुआ सफेदा २१ ग्राम, कतीरा और बबूल का गोंद प्रत्येक ५। ग्राम, कपूर १०।। ग्राम, लोबान और अफीम प्रत्येक १।।। ग्राम एकत्र कर शियाफ (सलाई) बना लें और आँख में लगावें तो रमद को लाभ होता है।

रतौंधी रात्र्यान्ध्य की चिकित्सा

(१) सिरस के पत्तों का अर्क नेत्रों में लगाने से रतौंधी दूर हो जाती है।

(२) प्याज का रस निकाल कर आँखों में डालने से भी रतौंधी दूर होजाती है।

(३) काली हरड़, काली मिर्च और सोंठ समान भाग लेकर पीसें और नेत्र में लगावें।

(४) पिप्पली, काली मिर्च और कमीला समान भाग लेकर पीसें और आँख में लगावें।

(५) सिरस के बीज महीन पीसकर आटे में मिलावें और उसकी रोटी बनाकर तीन दिन तक खाँय तो रतौंधी दूर होती है।

(६) गधे का ताजा रक्त नेत्र में लगाने से २-२ दिन में ही रतौंधी नष्ट हो जाती है।

(७) हरड़, और लालमिर्च समान भाग को महीन पीस कर शहद के साथ घोटें और आँख में लगावें।

(८) बड़ी हरड़ का छिलका और कान मैल समान भाग लेकर पीसें और गोली बनालें। इस गोली को पानी के साथ घिसकर सायंकाल के समय आँख में लगावें।

(९) समुद्र फल की मिंगी को बकरी के मूत्र में घिसकर आँख में लगाने से भी रतौंधी दूर होजाती है।

(१०) सहजने की कोमल डाल का रस निकाल कर शहद में मिलावें और आँख में टपकावे।

(११) अदरक पीसकर उसका स्वरस निकालें और आँख में टपकावें तो भी रतौंधी दूर होजाती है।

(१२) अथवा सोंठ को पानी के साथ घिस कर आँख में २-३ बूँद टपकाने से भी लाभ होजाता है।

(१३) बकरी के कलेजे का कबाब बनाकर उसमें से जो पानी टपके उसे आँख में लगावें।

(१४) अथवा कलेजी में साबुत पीपल रखकर आग पर रखें और जब वह जल जाये तब पीपल को निकाल कर महीन पीसें और शहद में मिलाकर आँख में लगावें तो रतौंधी दूर होती है।

दिनौंधी (दिवान्ध्य) की चिकित्सा

इसमें मस्तक को तरी पहुँचाने वाले उपचार करें। ठण्डे पानी में डुबकी लगाकर आँखों को पानी में खुली रखें। उड़द की दाल न खाँय। ध्यान रहे कि रक्त गाढ़ा न हो, ऐसा उपाय करना चाहिए।

सलाक (पलक मोटे होने) की चिकित्सा

सलाक नामक नेत्र रोग में पलक मोटे होजाते हैं तथा सूखापन आ जाता है। खुजली चलती है और पलकों के बाल गिरने लगते हैं। इसमें फस्द खोलना और शिर के पीछे पछने लगाना हितकर माना जाता है। औषधि प्रयोग निम्न किये जाने चाहिये।

(१) आक की जड़ जलाकर उसकी राख को पानी के साथ घिसें और नेत्र के चारों ओर लेप करें।

(२) धतूरे और भृंगराज के पत्तों के रस में रुई भिगो कर छाया

में सुखावें और उसकी बत्ती बनाकर तिल के तैल में जलाकर काजल पार लें। इस काजल को बासी पानी में मिलाकर आँख में लगावें।

(३) अथवा आक के दूध में रुई भिगोकर पूर्ववत सुखावें और तिल-तैल के दीपक में जलाकर काजल पार लें। इसे नेत्रों में आँजने से शीघ्र लाभ होता है।

(४) पुराने ढोल का चमड़ा लेकर उसे कोयलों की आग में भस्मकर लें तथा महीन पीसकर धुनी हुई रुई के साथ रखकर बत्ती बना लें और कड़वे तैल के दीपक में जला कर काजल पार लें। इसे आँखों में डालें तो भी समुचित लाभ होता है।

(५) नीम की पत्तियों का रस निकाल कर आँखों में लगाने से भी शीघ्र लाभ सम्भव है।

परबाल रोग पर विभिन्न प्रयोग

(१) गधे की लीद को सुखाकर पाताल यन्त्र से तैल निकालें और पलकों पर लेप करें।

(२) कबूतर की बीट पीस कर शहद मिलावें और पलकों पर लेप करें तो भी लाभ होता है।

(३) मक्खी का शिर हटाकर उसे सुखावें और पानी के साथ पीस कर पलकों पर लेप करें।

(४) कद्दू को भस्म करके नेत्रों में सुरमा के समान आँजने से भी परवाल रोग में लाभ होता है।

(५) नीलाथोथा, खपरिया, कपूर और मिश्री समान भाग को पानी के साथ पीस कर गोली बनावें और फिर पानी के साथ घिस कर आँखों में आँजें।

(६) साँप की काँचली को भस्म करके तिल-तैल के साथ मिला कर पलक पर लेप करें।

(७) सीप को भस्म करके और पीस कर नेत्र में लगाना भी हितकर है।

(८) सफेद विषखपरा की जड़ को छाया में सुखा कर पानी के साथ पीसें और लेप करें।

(९) कटेरी के फल को पानी के साथ औंटाकर उसका भपारा लेना भी इस रोग में लाभदायक है।

(१०) चकचूँदर की विष्टा जली हुई और बिना जली हुई समान भाग लेकर महीन पीसें और शहद के साथ घोट कर लेप करें।

(११) पुरानी रुई को हल्दी में तीन बार रंग-रंग कर सुखालें तथा फिर उसे बिनोले के गूदे में भिगो कर सुखावें और तब बत्ती बनाकर काजल पारें। यह काजल नेत्रों में लगाने से परवाल रोग दूर होता है।

(१२ जस्त को लोहे के पात्र में रखकर कोयलों की आग पर पिघलावें और बथुआ के साग का थोड़ा-थोड़ा रस उस पर टपकाते जाँय। ऐसा करते रहने से जस्त की सफेद अथवा पीली भस्म बन जाती है। ठण्डी होने पर उसे पीसकर रखें और आवश्यक होने पर आँखों में लगावें। इससे परवाल पलकों का मोटा होना, खुजली, लाली और आँखों से पानी गिरने में लाभ होता है।

(१३) कुन्दरू गोंद को शहद के साथ मिलाकर आँजने से धुन्ध, खाज सफेदी, घाव, ज्योतिमांद्यादि में लाभ होता है।

(१४) अथवा केवल कुन्दरू गोंद का कपड़छन चूर्ण करके अंजन के समान आँजना चाहिए।

मोतियाबिन्दु के उपचार

मोतियाबिन्दु के आरम्भ में रोगी को अपने नेत्रों के आगे मक्खी, मच्छर जैसी आकृतियाँ दिखाई देने लगती हैं। उचित उपचार के अभाव में इसमें वृद्धि होती जाती है और बाद में पानी उतर आने पर पुतली में परिवर्तन होकर ज्योति नष्ट होजाती है।

रोग का आरम्भ होते ही कनपटियों पर जोंक लगवाना चाहिए। परन्तु पानी उतर आने पर दोष को पका कर मस्तक को साफ करना उचित होता है। रोगी को दूध और मछली का सेवन हानिकारक है।

मोतियाबिन्दु में लाभकारी प्रयोग

(१) निर्मली को पीसकर शहद के साथ घोटें और आँखों में लगावें तो मोतियाबिन्दु की आरम्भिक अवस्था में लाभ होता है।

(२) वच, सोंठ, सोंफ और हींग समान भाग लेकर महीन पीस लें और शहद में मिलाकर ४ ग्राम की मात्रा में सेवन करें। इससे मोतिया-बिन्दु के प्रारम्भ में लाभ सम्भव है।

(३) नौसादर पीस कर सुरमा के समान आंजें। इससे भी मोतिया-विन्दु कट जाता है।

(४) हिंगोट की मिंगी २ भाग और अफीम १ भाग कूट-छान कर बत्ती बनावें और आँखों में लगावें।

(५) श्वेत घुंघुची का रस और कागजी नीबू का रस समान भाग मिलाकर प्रातःकाल लगावें।

(६) इमली के पत्ते १०० ग्राम लेकर कांसे के वर्तन में रखें तथा नीम की लकड़ी में तांबे का पैसा लगा कर उससे इतना घोटें कि घोटते-घोटते गाढ़ा हो जाय और फिर पुत्रवती स्त्री के दूध में ५ दिन घोटकर अंजन करने के काम में लावो। इससे मोतियाबिन्दु में शीघ्र लाभ सम्भव है।

(७) पुत्रवती स्त्री के दूध में भीमसेनी कपूर को घोट कर आँखों में लगावें तो नेत्रों के आगे मक्खी, मच्छर घूमते दिखाई देने में शीघ्र लाभ होता है।

(८) कोए का पित्ता समान भाग शहद में मिलाकर खूब घोटें और आँखों में आँजें तो भी मक्खी-मच्छर आदि उड़ते प्रतीत होने में अपेक्षित लाभ सम्भव है।

(९) हरड़ की गुठली का गूदा ताजा पानी के साथ पीस कर ३ घन्टे तक खरल करें और गोलियाँ बनालें। यदि मोतियाबिन्दु के आरम्भ से ही इसका सेवन किया जाय तो आशाप्रद लाभ होता है।

(१०) सेवती के फूल और कुन्दरू गोंद समान भाग पीस कर रुई में लपेटें और वत्ती बनाकर तिल-तैल के दीपक में जला कर कागज बनालें। यह मोतियाबिन्दु में लाभप्रद है।

(११) कान का मैल और हींग समान भाग लेकर शहद के साथ घोट कर आँखों में लगावें तो शीघ्र लाभ हो सकता है।

(१२) नील के बीजों को महीन पीस कर लगावें तो पानी उतरना रुक जाता है।

निम्बु नवनीत का योग

कागजी नीबू २ नग का रस निकाल कर उसे गाय के मक्खन ४०-५० ग्राम में ठीक प्रकार से मिलावें और फिर ४८ घन्टे तक पानी के बर्तन में रखें। तत्पश्चात् पानी से धोकर निकाल लें और दो कागजी नीबुओं का रस पुनः डाल कर खूब घोटें, जिससे कि वह एक जी हो जाय। उसे पुनः पानी के पात्र में रखें। इस प्रकार धोने की यह क्रिया २५ बार करनी चाहिए। उसके बाद कांच या चीनी के पात्र में रख लें। इससे आँखों में खस के दो दानों के प्रमाण में लगाना चाहिए। इसे रोग के आरम्भ में लगावें तो रोग बढ़ता नहीं और शीघ्र ठीक हो जाता है तथा बढ़े हुए मोतियाबिन्दु में भी बहुत लाभ करता है।

सोंफ का सुरमा

सोंफ का हरा वृक्ष लाकर काँच अथवा चीनी के पात्र में रखें और जब वह सूख जाय तब पीस कर सुरमा के समान सलाई से आखों में लगावें। यह मोतियाबिन्दु में अद्भुत प्रभाव दिखाता और रोग को वढ़ने से रोकता है।

मोतियाबिन्दु नाशक गोली

श्वेत फिटकरी, निर्मली, नीलाथोथा, हींग और संग बसरी १-१ ग्राम लेकर कूट-कपड़छन करें और ८ किलोग्राम दही के साथ मथ कर मिलावें और उसकी गोली बनालें। मोतियाबिन्दु के रोगी को इसे स्त्री के दूध में घिसकर आँखों में आँजना चाहिए

माँड़ा, नाखूना और जाले का उपचार

नेत्र की रगों में मवाद (मल) भर जाने से माँड़ अथवा फुली रोग उत्पन्न होजाता है। नाखूना की उत्पत्ति नेत्र के बड़े कोये की ओर होती है। नेत्र की पुतली पर उत्पन्न होने वाली सफेदी को जाला कहते हैं। इसके उपचारार्थ सरेरू रग अथवा ललाट की रग की फस्द खोलना और नेत्र को स्वच्छ करने वाली दवाओं का प्रयोग करना उचित होता है।

मांड़ा और फूली की दवा

सिरस और खिरनी के बीजों की मिंगी कूट-छान कर सिरस के पत्तों के स्वरस के साथ खरल करके गोलिया बनावें और छाया में सुखा लें। इसे स्त्री के दूध में घिस कर लगाने से माँड़ा और फुली दूर होकर आँखें स्वच्छ होजाती हैं।

अन्यान्य औषधियाँ

(१) सेंधा नमक, लाल चन्दन, पलाश पापड़ा और जावा हरड़ समान भाग लेकर कूट-छान लें और गोली बनालें। फुली पर पानी के साथ घिस कर लगावें तो लाभ होता है।

(२) फिटकरी भुनी हुई और लाल चन्दन समान भाग लेकर ग्वार-पाठे के रस में खरल कर गोली बनावें। इसे पानी के साथ घिस कर लगाने से माँड़ा या फुली में लाभ होता है।

(३) अरहर के पत्तों का रस और कागजी नीबुओं का रस मिलाकर बिना कलई के बर्तन में डालें और नीम के डन्डे में ताँबे का पैसा ठोंक

कर उससे घोट कर गोलियाँ बना लें। इसे घिस कर आँख में लगावें तो दर्द और नाखूना आदि में लाभ होता है।

(४) समुद्रफल का गूदा, रीठे का गूदा, काली हरड़ की गुठली का गूदा और खिरनी के बीज का गूदा समान भाग लेकर नीबू के रस में घोट कर गोली बनालें। इसे घिस कर लगाने से माँड़ा, फूली, सलाक और मोतियाबिन्दु में लाभ होता है।

(५) बारहसिंग को का सींग दूध के साथ घिस कर नेत्रों में लगावें तो जाला दूर होता है।

(५) अरहर के पुराने वृक्ष की जड़ घिस कर लगाने से फुली कट जाती है।

(७) विसखपरे की जड़ और सफेदा समान भाग लेकर पानी से पीसें और आँख में लगावें तो नाखूना नष्ट होता है।

(८) कुछ दिनों तक लाल प्याज का स्वरस नेत्रों में डालें तो भी जाला दूर होता है।

(९) एरण्ड बीज १ नग, मिश्री ३ ग्राम और शुद्ध चाकसू ५ ग्राम पीस कर रख लें और आँखों में लगावें। इससे भी फुली कट जाती है।

(१०) तेजपात को महीन पीस कर आंखों में लगावें तो नाखूना आदि में लाभ होता है।

(११) समुद्रफेन को जल योग से पीस कर लगाने से सफेदी दूर होती है।

(१२) अथवा समुद्रफेन को बिनौले के तैल में पीस कर लगावें।

(१३) बैंगन की जड़ को जल के साथ पीस कर आँखों में लगावें तो पुतली की सफेदी नष्ट होती है।

(१४) श्वेत कलमी शोरा को खूब महीन पीसकर कुछ हल्दी का चूर्ण मिलावें और ठीक प्रकार घोट कर रखें। इसके लगाने से नाखूना, जाला प्रभृति अनेक रोग दूर होकर नेत्रों की ज्योति बढ़ जाती है।

(१५) काशगरी सफेदा, जंगाल और बवूल का गोंद समान भाग लेकर पीसें और पानी के साथ घोट कर शियाफ (सलाई) बनालें और छाया में सुखालें। इसे पानी के साथ घिस कर आँख में लगावें। इससे फूली, नाखूना और खुजली दूर होती है।

(१६) तोरई के बीज की मिंगी तिल के तैल में पीस कर आँखों में लगावें तो फुली कट जाती है।

(१७) यदि आँखों में बट वृक्ष का दूध भर दें तो सफेदी दूर होना सम्भव है।

(१८) कबूतर या चिड़िया की बीट पीस कर लगावें तो भी आँखों की सफेदी दूर होती है।

(१९) शहद में अबावील की बीट पीस कर मिलावें। इसके लगाने से जाला दूर होता है।

(२०) अथवा कबूतर या मुर्गी की बीट को कागजी नीबू के रस में डालकर घोटें। यह माढ़ा फुली में उपयोगी है।

(२१) आक की जड़ को जल के साथ घिसकर आँख में लगावें तो नाखूना में लाभ होता है।

(२२) श्वेत फिटकरी, सेंधानमक और सोंठ समान भाग लेकर कूट कपड़छन करलें। इसे अंजन के समान नित्य प्रति लगाने से जाला नष्ट होजाता है।

(२३) पुत्र वाली औरत के दूध में मिश्री पीस कर लगाने से नेत्र की श्वेतता दूर होती है।

(२४) धुन्ध और जाला के निवारणार्थ नीबू के रस में कटेरी की जड़ घिस कर लगाने से लाभ होता है।

(२५) सेंधानमक १ भाग और मिश्री २ भाग लेकर महीन पीसें और सुरमे के समान लगावें तो तो जाला और मोतियाबिन्दु दूर होता है।

(२६) फिटकरी और नौसादर ठीक प्रकार से खरल कर कपड़े में छान लें। इसे आँखों में लगाने से जाला, फूली, ढलका, रतौंधी आदि में लाभ होता है। इससे ज्योति भी तीव्र होती है।

(२७) प्याज के रस में कपड़ा भिगोवें तथा धूल-मिट्टी रहित स्थान में सुखावें। फिर उसकी वत्ती बनाकर पाव भर तिल के तैल के दीपक में जलावें और काजल पार लें। इसके लगाने से जाला आदि नेत्र-विकारों में लाभ होता है।

(२८) लाला के फूल मंगा कर शहद के साथ महीन पीस लें। इसके लगाने से सफेदी नष्ट होती है।

(२९) आमलों को जौकुट करके पानी के साथ दो घन्टे तक औंटा कर रख लें। इसे नित्य प्रति दिन में तीन बार आँखों में डालें। इससे जाला शीघ्र ही दूर होता है।

(३०) हरी चूड़ी लेकर उसे नीबू के रस में इतनी घोटें कि वह कज्जली के समान महीन हो जाय। जब यह सूख जाय तब पुनः घोटकर रखलें। इसे अंजन के समान लगावें तो फुली, जाला, नाखूना आदि नेत्र-विकारों में लाभ होता है।

(३१) वारहसिंहा के सींग को टुकड़े-टुकड़े करके पानी में भिगोवें और फिर सिल पर पीस कर लुगदी बना लें। अब इसे कागजी नीबू के रस में खरल कर कालीमिर्च के बराबर गोलियाँ बनालें। इसे घिसकर नेत्र में लगाने से जाला दूर होजाता है।

(३२) हल्दी की एक बड़ी गाँठ लेकर उसमें छेद करें और उसे गेहूँ की दो कच्ची रोटियों के मध्य रखकर, तवे पर डाल कर सेकें। जब रोटी जल जाय तब हल्दी को निकाल कर रख लें। यह हल्दी सफेद फिटकरी के साथ जल-योग से घिस कर आँखों में लगावें तो नाखूना में लाभ होता है।

(३३) बकरी के पित्त में शहद मिलाकर आँखों में लगाने से नाखूना रोग दूर होता है।

(३४) हल्दी, आमाहल्दी और दालचीनी और नीम की पत्तियाँ समान भाग को कूट-छान कर बछड़े के मूत्र में नित्य प्रति ६ घन्टे खरल करें। यह क्रिया छः महीने तक करनी चाहिए तथा अन्त में गोलियाँ बना लेनी चाहिए। इसे गुलाब पुष्प के साथ घिस कर लगाने से नाखूना रोग में लाभ होता है।

(३५) नमक और खाँड़ समान भाग लेकर जीभ पर रखें, और जब जीभ खरखरी होजाय तब उससे जाले को चाटें तो शीघ्र लाभ होता है।

(३६) जायफल का बक्कल, गिलोय, नीम की छाल, लाल चन्दन, पित्त पापड़ा, चिरायता, गुल मुण्डी और खस ४-४ ग्राम को अठगुने पानी में ओंटा कर चौथाई शेष काढ़ा करें और उसमें १० ग्राम शहद मिला कर सेवन करें इसके २-३ सप्ताह तक सेवन करने फूली दूर हो जाती है।

(३७) गुल मुण्डी ६० ग्राम, त्रिफला का बक्कल, काबुली हरण, जवा हरड़, मुलहठी, धनियां और हित्त पापड़ा १०-१० ग्राम तथा कन्द ३६० ग्राम। प्रथम त्रिफला आदि द्रव्यों को कूट-कपड़छन करें घी में तल लें तथा कन्द की चाशनी करके उसमें मिलालें। इसे ६ ग्राम से २० ग्राम तक की मात्रा में ले सकते हैं। यह फूली प्रभृति तथा अन्य सभी प्रकार के नेत्र रोगों में उपयोगी है।

(३८) त्रिफला का बक्कल, अडूसा, आमा हल्दी, लाल चन्दन, चिरायता और नीम की छाल २५-२५ ग्राम, नागर मोथा, सोंठ और गिलोय १५-१५ ग्राम तथा अमलताश का गूदा ५० ग्राम लेकर जौकुट चूर्ण करलें। इसमें से २५ ग्राम यह चूर्ण सौलह गुने पानी में औटा कर

अष्टमांश शेष कर लें। फिर इसे छान कर ६ ग्राम शहद मिलाकर सेवन करें। इससे दो सप्ताह तक सेवन करने से फूली आदि नेत्र-रोगों में लाभ होता है।

नाखूना, सफेदी और नजले में लाभकारी दवा

साबुन १२ ग्राम, नीलाथोथा और राल ३-३ ग्राम लें। साबुन के टुकड़े करके लोहे के पात्र में आग पर चढ़ावें और नीलाथोथा पीसकर उसमें मिलावें। तदुपरान्त उसमें राल भी पीस कर डाल दें और लोहे की कलछी से तब तक चलाते रहें, जब तक कि वह काला न हो जाय। फिर उतार कर सुरक्षित रखें। जब इसका प्रयोग करना चाहें तब एक खम के दाने के बराबर निकाल कर सीपी में घोलें और नेत्र में लगावें। तदुपरान्त ३ दिन बाद पुनः लगावें। इससे नाखूना, नजला, आंख की सफेदी आदि में लाभ होता है।

ढलका रोग और उसके उपचार

ढलका उसे कहते हैं। जिसमें अकारण ही आंसू बहते तथा नेत्र हर समय गीले रहते हैं। आयुर्वेद में इसे अश्रुपात कहा गया है। यूनानी चिकित्सकों के मत में इस रोग में प्रथम तो मवाद को पका कर सफाई करनी चाहिए और उसके बाद औषधोपचार करना चाहिए। यहां उसके लिए नुस्खे लिखे जाते हैं।

(१) कुदरू गोंद को गुलाब जल में मिलाकर आंखों को धोना चाहिए। यदि गुलाब जल न मिले तो पानी के साथ मिला कर भी धो सकते हैं। इससे ढलका में होता हैं।

(२) बड़ी हरड़ का वक्कल और चाकसू समान भाग मिला कर महीन पीसें और आंख में बुरकें तो ढलका रुकता है।

(३) घोड़े के ऊपर के दांत को पानी के साथ घिस कर आँखों में लगावें तो ढलका या नजला रुक सकता है।

(४) काली मिर्च, सिरस के बीज और बनपशा समान भाग लेकर पृथक-पृथक पीस लें तथा पानी के योग से घोट कर गोली बना लें। इसके लगाने से ढलका बन्द होता है।

(५) आबनूस की लकड़ी को पानी के साथ घिस कर आंख में लगाने से भी ढलका रुक जाता है।

(६) बालछड़, बड़ी हरड़ का वक्कल, जवा हरड़ और माजूफल समान भाग लेकर पानी के साथ पीसें गोलियां बना लें। इसे घिस कर लगाने से ढलका में शीघ्र लाभ सम्भव है।

(७) काला नमक और काली मिर्च २-२ भाग, समुद्रफेन १ भाग, पिप्पली ४ भाग तथा सुरमा २७ भाग लेकर खूब महीन खरलकर कपड़छन चूर्ण बना लें। इसे नेत्रों में लगाने से ढलका बन्द होता है।

(८) हरड़ बड़ी की गुठली की मिंगी २ भाग, बहेड़े की गुठली की मिंगी और आमले की गुठली की मिंगी ३-३ भाग, जल-योग से पीसकर गोली बनालें। इसे पानी के साथ घिस कर आँखों में लगावें तो ढलका में शीघ्र लाभ सम्भव है। खुजली में भी लाभ करती है।

(९) बड़ी हरड़ की गुठली की भस्म करके १० ग्राम लें और इसमें ५-५ ग्राम सेंधा नमक और माजूफल मिलाकर महीन पीस छान कर रखें। इससे ढलका रोग में बड़ा लाभ होता है।

(१०) धुनी हुई रुई लेकर उसकी ३ बत्तियाँ बनावें तथा धतूरे के रस में दो बार भिगो-सुखाकर दो बार ही मदार के दूध में भिगोकर छाया में सुखावें तथा उन्हें एरण्ड-तैल के दीपक में रख कर काजल पारें। । उस काजल में थोड़ी भुनी फिटकरी ओर भुना नीलाथोथा पीस कर तथा गाय के घी में मिला, घोट कर रख लें। इसे नेत्रों में लगानेसे ढलका रोग में विशेष लाभ होता हैं।

(११) सफेद कत्था, भुनी फिटकरी, रसौत, समुद्रफेन, अफीम,

नीलाथोथा और बड़ी हरड़े का वक्कल समान भाग लेकर पानी के साथ घोटें और रगड़ा बनाकर लगावें। इससे ढलका, कोयों की लाली, नेत्रों की लाली और खुजली में लाभ होता है।

नेत्र ज्योति मन्द होने के उपचार

यदि नेत्र-ज्योति मन्द होने लगेतो मस्तकको स्वच्छ करने और शक्ति देने वाले उपचार करने चाहिए। वृद्धावस्था के कारण कम दिखाई देने का यद्यपि कोई अधिक कारगर उपाय नहीं है, फिर भी यदि उपाय किया जाय तो ज्योति को अधिक कम होने से रोका जा सकता है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि अधिक रोने, अधिक लंघन करने या अधिक मैंथुन करने आदि कारणों से भी ज्योति मन्द हो जाती है। इस-लिए यथा सम्भव उससे बचना चाहिए। अजीर्ण करने वाली वस्तुओं का सेवन या गर्दन के पीछे पछने लगवाना भी दृष्टि के लिये हानिकारक होने के कारण त्याज्य समझा जाता है।

अब नेत्र ज्योति को बढ़ाने में सहायक कुछ उपचार लिखना अपेक्षित है–

(१) वृद्धावस्था में ज्योति मन्द होने पर शिर में कंघा करने से लाभ होता है। इसके लिए दिन में कई बार कंघा करना चाहिए।

(२) कच्चे और पक्के शलगम के खाने से किसी भी कारण से मन्द हुई ज्योति पुनः तीव्र होती है।

(३) स्वच्छ पानी में तैरना और पानी में ही आंखें खोल देना आंखों की दृष्टि को बढ़ाने में अद्भुत गुण दिखाता है।

(४) शरीर के नीचे के भाग का व्यायाम करने, उसे दबाने और मलने आदि से भी नेत्र ज्योति बढ़ने लगती है।

(५) चमेली के पुष्प की डंडी तोड़ कर उसमें समान भाग मिश्री

मिला कर भले प्रकार खरल कर लें। इसे सुरमे के समान लगाने से आँखों की दृष्टि तीव्र होती है।

(६) निर्मली को पानी के साथ घिस कर नेत्रों में लगाना भी दृष्टि-मांद्य में उपयोगी है।

(७) प्याज के रस को शहद के साथ मिलाकर आँखों में डालने से ज्योति का कम होना ठीक होता है। नजले के आरम्भ में तथा अन्य अनेक नेत्र रोगों में भी इससे लाभ होता है।

(८) हिंगोटे की मिंगी को जल के साथ पीस कर नेत्रों में लगाने से भी लाभ होता है।

(९) रीठा की गुठली का गूदा, नीबू के रस में खरल करके गोलियाँ बना लें। इसे थूक के साथ घिस कर आंखों में लगाने से शीघ्र लाभ सम्भव है।

(१०) जवा हरड़ और मिश्री समान भाग लेकर महीन पीसें। इसे आंखों में सुरमें के समान लगाने से भी लाभ होता है।

(११) प्रातःकाल सोते से उठते ही नेत्रों में अपना थूक लगावें। इस प्रयोग के नित्य प्रति करने से नेत्र की दृष्टि कम होना तथा अन्यान्य नेत्र रोग दूर होते हैं।

(१२) खपरिया ६ ग्राम लेकर छोटे-छोटे टुकड़ें करके कागजी नीबुओं के रस में डाल कर मिट्टी के पात्र में रखें और कपरोटी करके जङ्गली कण्डों की आग में रख दें और फिर निकाल कर खरल करें तथा आंखों में लगावें। इससे भी दृष्टि तीव्र होती है।

(१३) हरड़ नग १२ की गुठली का गदा लें तथा उसके साथ काली मिर्च ५ नग मिलाकर आमले के रस में डालें और फिर इतना घोटें कि घोटते-घोटते काली हो जाय। इससे भी ज्योति तीव्र होती है।

(१४) गजी का कपड़ा लेकर सिरस के रस में भिगो-भिगोकर तीन बार सुखावें और फिर बत्तीबनाकर चमेलीके तैलमें जलाकर काजल कर लें तथा सुरमे के समान लगावें। यह दृष्टि मांद्य में उपयोगी हैं।

(१५) काली मिर्च १६ नग, चमेली की कली ५० नग, पीपल ६० नग और तिल के फूल ८० नग कूट-छानकर सुरमे के समान प्रयोग करें। इससे भी दृष्टिमांद्य दूर होता है।

(१६) नीम के फूल लेकर छाया में सुखा लें और उसमें समान भाग कलमी शोरा मिला कर महीन पीस लें। इसे सुरमे के समान लगावें। ज्योति तीव्र करने में यह उपयोगी है।

(१७) कालीमिर्च १ भाग, पीली हरड़ का वक्कल २ भाग और हल्दी ३ भाग लेकर कपड़छन चूर्ण बनालें और इसे गुलाब जल अथवा ताजा पानी के साथ खरल करके आंखों में लगावें। इसमें आँखों की ज्योति तीव्र होती है।

(१८) अखरोट २ नग और हरड़ की गुठली ३ नग मिला कर जलावें और उसमें कालीमिर्च ४ नग डाल कर खरल करें और सुरमे के समान आंजें। इसके लगाने से ज्योतिमांद्य में लाभ होता है।

(१९) धुनी हुई रुई को आक के दूध में भिगोवें और छाया में सुखा लें तथा बत्ती बनाकर सरसों के तैल के दीपक में जलाते हुए काजल पार लें। उस काजल को कांसे की कटोरे में जाल कर नीम की लकड़ी में पैसा ठोक कर उससे गुलाबजल के साथ घोटें। उसे सलाई से लगाने से ज्योतिमाँद्य दूर होता है।

(२०) जवा हरड़ छोटी २ नग, अफीम ५०० मि.ग्रा. और लोंग के फूल की ओर का आधा भाग लेकर कुआँ के पानी के साथ पीसें और आंखों पर लेप करें। इससे नेत्र ज्योति का मन्द होना, लालिमा एवं विकार दूर होते हैं।

(२१) सीसा को आग में गला कर त्रिफला के पानी में बुझावें।

उसके पश्चात् भांगरे के रस में, फिर गाय के घृत में और फिर शहद में बुझावें और सलाई बनालें। इसे नित्य प्रति प्रातःकाल आंखों में लगावें तो नेत्र ज्योति बढ़ती और अनेक नेत्र-रोग दूर होते हैं।

(२२) रात्रि में सोते समय सोंफ ६ ग्राम कूट-पीस कर समानभाग सफेद बूरे के साथ मिलावें औए फाँककर सो जांय। इस प्रकार नित्य प्रति करते रहने से नेत्र ज्योति बढ़ती है।

(२३) सोंफ के अर्क से इत्र तैयार करें और उसे आंखों में लगावें तो भी नेत्र ज्योति तीव्र होती है।

(२४) मुण्डी के अर्क का सेवन करना भी दृष्टिमांद्य में उपयोगी माना जाता है।

(२५) मुण्डी के पुष्प पाव भर लेकर ६ गुने पानी में रात्रि के समय भिगोवें और प्रातःकाल आग में औंटा कर चौथाई शेष करके छान लें तथा इसमें तीन पाव श्वेत शर्करा डाल कर शर्बत की चाशनी बना लें। इसे ४-५ चम्मच की मात्रा में नित्य प्रति सेवन करना चाहिए। इससे नेत्र ज्योति बढ़ती है तथा मस्तक की भाप (गर्मी) दूर होती है।

डॉ० चमन लाल गौतम द्वारा रचित ग्रन्थ

१—मन्त्र महाविज्ञान ४ खन्ड	३२)
२—मन्त्र योग	८)
३—वैदिक मन्त्र विद्या	८)
४—मन्त्र शक्ति से रोग निवारण	५)७५
५—मन्त्र शक्ति से विपत्ति निवारण	५)७५
६—मन्त्र शक्ति से कामना सिद्धि	५)७५
७—मन्त्र शक्ति के अद्भुत चमत्कार	३)७५
८—ओंकार सिद्धि	५)७५
९—गायत्री सिद्धि	५)७५
१०—श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा	१४)
११—शिव रहस्य २ खण्ड	११)५०
१२—विष्णु रहस्य	६)
१३—देव रहस्य	६)
१४—उपासना महाविज्ञान	६)
१५—महाभारत भाषा	८)
१६—हिप्नोटिज्म (सम्मोहन विज्ञान)	५)५०
१७—प्राणायाम के असाधारण प्रयोग	५)७५
१८—योगासन से रोग निवारण	५)७५
१९—सूर्य नमस्कार से रोग निवारण	३)५०
२०—यज्ञ से रोग निवारण	५)
२१—प्राथमिक चिकित्सा	४)५०
२२—मूत्र चिकित्सा	२)७५
२३—सिर दर्द चिकित्सा	२)५०
२४—व्रत एवं त्योहार	४)
२५—ब्रह्मचर्य की प्रचण्ड शक्ति	३)
२६—मोटापा कैसे दूर हो ?	२)५०

डॉ० चमन लाल गौतम द्वारा सम्पादित ग्रंथ

१—तन्त्र विज्ञान	५)७५
२—तन्त्र रहस्य	५)७५
३—तन्त्र महाविद्या	५)७५
४—तन्त्र महासिद्धि	५)७५
५—तन्त्र महासाधना	१०)
६—शारदा तिलक	१०)
७—लक्ष्मी सिद्धि	८)७५
८—गणेश सिद्धि	६)
९—बगलामुखी सिद्धि	५)५०
१०—गायत्री तंत्र	५)७५
११—वृहत् स्तोत्र-रत्नाकर	८)
१२—मनुस्मृति	६)७५
१३—पंचतंत्र	७)५०
१४—अष्टाङ्ग योग सिद्धि	५)७०
१५—अष्टाङ्ग योग रहस्य	५)७०
१६—हठयोग प्रदीपिका	४)
१७—घेरंड संहिता	३)७५
१८—शिव संहिता	३)२५
१९—गोरक्ष संहिता	३)२५
२०—वृहद् शिवस्वरोदय	३)५०
२१—विचार सागर	११)
२२—विचार चन्द्रोदय	२)
२३—पञ्चीकरण	३)
२४—ब्रह्मसूत्र	१०)
२५—उपदेश साहस्री	५)७५
२६—वृत्ति प्रभाकर	७)५०
२७—सौन्दर्य लहरी	५)७५

चिकित्सा और स्वास्थ्य साहित्य